भगवान श्री रजनीश

जीवन ही है प्रभु

Beloved

Sw. Vishnu Krishna Bhati

1.

जीवन ही है प्रभु

भगवान श्री रजनीश

मेरे लिए जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा
नहीं है। जीवन का ही दूसरा नाम है परमात्मा।
जी भर कर जीना, समग्रता से जीना,
परिपूर्णता से जीना।

रजनीश फाउंडेशन

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश
श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगांव पार्क
पूना ४११ ००१ (महाराष्ट्र)

सम्पादन
स्वामी नारायण भारती
संकलन
स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती
संयोजन
स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

प्रथम संस्करण : २१ मार्च १९८०
मूल्य : चार रुपये

मुद्रक
स्वामी अशोक सत्यार्थी
ऐडवेंटा ऐडवर्टाईजिंग इन्टरनेशनल
३११, थापर नगर,
मेरठ—२५०००२

JEEVAN HI HAI PRABHU Rs. 4/-
by Bhagwan Shree Rajneesh

भगवान श्री रजनीश : एक परिचय

भगवान श्री रजनीश के सम्बन्ध में कुछ भी कहना कितना कठिन है ! कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है । यह बिल्कुल वैसा ही है, जैसे कोई चम्मच से सागर नापने चले । अथवा सूर्य को दीपक दिखाने चले । अपना परिचय तो वे आप ही हैं । उन्हें महसूस तो किया जा सकता है, लेकिन उनके सम्बन्ध में कहा कुछ नहीं जा सकता । अपनी सामर्थ्य के अनुकूल उन्हें जिया तो जा सकता है, लेकिन उनके सम्बन्ध में कुछ भी अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता । हां, उनकी विराटता की एक झलक उनके साहित्य से अवश्य मिल सकती है ।

ज्ञानोपलब्ध सद्‌गुरुओं में भी भगवान श्री रजनीश अनूठे और अपूर्व हैं । उनके प्रेमियों, भक्तों, व साधकों को ऐसा लगता है कि वे सब एक साथ हैं—कृष्ण, मुहम्मद, जीसस, लाओत्से, जरथ्रुस्त्र, चैतन्य, कबीर, नानक—जो भी प्रज्ञा-पुरुष अब तक हुए हैं । और वे स्वयं अपने सम्बन्ध में कहते हैं—'मैं तो अब हूं ही नहीं । जब से मैं नहीं हो गया हूं, तब से 'वही' मेरे भीतर प्रकाशित हो रहा है ।' जब वे नानक पर बोलते हैं, तो ऐसा लगता है जैसे नानक ही वापस लौटकर बोल रहे हैं । और जब वे कृष्ण पर बोलते हैं, तो ऐसा नहीं लगता कि वे कृष्ण नहीं हैं । वे सबको एक साथ अभिव्यक्त करते हैं । जब भी वे किसी प्रज्ञापुरुष पर बोलते हैं, तो वही प्रज्ञापुरुष उनमें उतर आता है । यही कारण है कि उनके द्वारा पहली दफा एक जागतिक धर्म का सूत्रपात हो रहा है ।

अब आपको संयुक्त राष्ट्र संघ में ही विश्वभर के लोग देखने को नहीं मिलेंगे, बल्कि पूना के 'श्री रजनीश आश्रम' में भी यह दृश्य देखने को मिलता है । सारी दुनिया के लोग—क्या ईसाई, क्या यहूदी, क्या पारसी—मुसलमान, हिन्दू, जैन,

सिक्ख, बौद्ध—सभी जातियों के, सभी धर्मों के, सभी वर्गों के। और ये आपको दिखाई पड़ेंगे एक ही रंग के कपड़े पहने हुए—गेरुए रंग के कपड़ों में।

जिन-वाणी का एक सूत्र उन पर बिल्कुल ही ठीक उतरता है। जो इस प्रकार है—

सिंह के समान पराक्रमी, हाथी के समान स्वाभिमानी, वृषभ के समान भद्र, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, वायु के समान निस्संग, सूर्य के समान तेजस्वी, सागर के समान गम्भीर, मेरु के समान निश्चल, चन्द्रमा के समान शीतल, मणि के समान कांतिमान, पृथ्वी के समान सहिष्णु, सर्प के समान अनियत-आश्रयी।

तथा आकाश के समान निरवलम्ब···बस, ऐसे ही हैं अपने 'भगवान श्री रजनीश'।

११ दिसम्बर, १९३१ को दिन के करीब १२ बजे के आस-पास, मध्य प्रदेश के रायसेन जिले के कुचवाड़ा नामक एक छोटे-से गांव में उनका अवतरण हुआ। माता-पिता ने अपनी पहली संतान का नाम रखा—रजनीश चन्द्र मोहन। जन्म के बाद तीन दिनों तक उन्होंने मां का दूध नहीं लिया भगवान श्री ने साधकों के संग एक चर्चा-विशेष में बताया है—कि इस जन्म के सात सौ वर्ष पूर्व वे इक्कीस दिन का एक अनुष्ठान कर रहे थे, जिसके पूरे होने के तीन दिन पूर्व ही किसी ने करुणावश उनकी हत्या कर दी थी और यदि वह अनुष्ठान पूरा हो जाता तो वे यह जन्म नहीं ले सकते थे।

भगवान बालपन से ही बड़े ही नटखट, तेजस्वी और होन-हार रहे हैं। करीब इक्कीस वर्ष की छोटी उम्र में २१ मार्च, सन् १९५३ को जबलपुर के भंवरताल नाम के उद्यान में स्थित मौलश्री नाम के वृक्ष के नीचे, रात्रि के दो बजे वे बोधि को उपलब्ध हुए।···अर्थात्, 'रजनीश चन्द्र मोहन' से भगवान

श्री रजनीश हो गये। सन् १९५७ में उन्होंने सागर विश्व-विद्यालय से दर्शन-शास्त्र में एम० ए० की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्रथम आकर प्राप्त की। पश्चात् रायपुर के एक तथा जबलपुर के दो महाविद्यालयों में आठ वर्ष तक आचार्य/प्रोफेसर/ के पद पर मिश्रण कार्य करते रहे। सन् १९६६ में, अपना पूरा समय साधना के विस्तार तथा धर्म के पुनुरुत्थान में लगाने के लिए उन्होंने नौकरी छोड़ दी। सन् १९७० तक भारत के कोने-कोने में घूम-घूमकर प्रवचन देने तथा शिविर लेने का उनका कार्य चलता रहा। सन् १९७० में भगवान बम्बई आ गये और चार बरस तक वहीं रहकर उन्होंने अपने धर्म-चक्र-प्रवर्तन को गहरा किया। २१ मार्च १९७४ को पूना के वर्त-मान आश्रम का शुभारम्भ हुआ, जो अभी धरती पर आध्या-त्मिक साधना का सबसे अनूठा और जीवंत केन्द्र है। संसार भर से आकर कोई एक हजार संन्यासी वहां रहकर साधना करते हैं। और उनके एक लाख से अधिक शिष्य पूरी पृथ्वी को गैरिक आभा से दीपित कर रहे हैं। वहां प्रतिदिन प्रात: ८ से ९.३० तक उनके प्रवचनों की गंगा बहती है और हर मास की ११ से २० तारीख तक १० दिन का समाधि-शिविर चलता है।

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

१. प्रभु की खोज

मेरे प्रिय आत्मन,

जीवन के गणित के बहुत अद्‌भुत सूत्र हैं। पहली अत्यन्त रहस्य की बात तो यह है कि जो निकट है वह दिखायी नहीं पड़ता, जो और भी निकट है, उसका पता भी नहीं चलता। और मैं जो स्वयं हूं उसका तो स्मरण भी नहीं आता। जो दूर है वह दिखायी पड़ता है। जो और दूर है और साफ दिखायी पड़ता है। जो बहुत दूर है वह निमंत्रण भी देता है, बुलाता भी है, पुकारता भी है। चांद बुला रहा है आदमी को, तारे बुला रहे हैं। जगत् की सीमाएं बुला रही हैं, एवरेस्ट की चोटियां बुलाती हैं, प्रशांत महासागर की गहराइयां बुलाती हैं। लेकिन आदमी के भीतर जो है वहां की कोई पुकार सुनायी नहीं पड़ती।

मैंने सुना है, सागर की मछलियां एक दूसरे से पूछती हैं, सागर कहां है। सागर में ही वे पैदा होती हैं, सागर में ही जीती हैं और सागर में ही मिट जाती हैं। लेकिन वे मछलियां पूछती हैं कि सागर कहां है। वे आपस में विवाद भी करती हैं कि सागर कहां है। मछलियों में ऐसी कथाएं भी हैं कि उनके किन्हीं पुरखों ने सागर को देखा था। मछलियों में ऐसे महात्मा हो चुके हैं जिनकी स्मृतियां रह गयी हैं, जिन्होंने सागर का अनुभव किया था। और बाकी मछलियां सागर में ही जीती हैं, सागर में ही रहती हैं, सागर में ही मरती हैं।

और उन पुरखों की याद करती हैं जिन्होंने सागर का दर्शन किया था।

मैंने सुना है, सूरज की किरणें आपस में पूछती हैं दूसरी किरणों से—सच में प्रकाश को देखा है ? सुनते है कहीं प्रकाश है और सुनते हैं कहीं सूरज है ! लेकिन कहां है ? कुछ पता नहीं। और किरणों में भी कथाएं हैं पुरखों की, उन्होंने सूरज को देखा है, प्रकाश को अनुभव किया है। धन्य थे वे लोग, धन्य थीं वे किरणें, जिन्होंने प्रकाश को अनुभव किया और अभागी हैं वे किरणें जो विचार कर रही हैं, और दुखी हैं, और पीड़ित हैं, और परेशान हैं।

मछलियों की बात समझ में आ जाती है, बड़ी पागल हैं। और किरणों की बात भी समझ में आ जाती है कि किरणें बड़ी पागल हैं, लेकिन आदमी की बात आदमी को समझ में नहीं आती कि हम भी बड़े पागल हैं। ईश्वर में ही जीते हैं, ईश्वर में ही जन्म लेते हैं, ईश्वर में ही श्वास-श्वास है, ईश्वर में ही मृत्यु है, ईश्वर में ही उठना है, उसमें ही लीन हो जाना है। और हम खोजते हैं और पूछते हैं ईश्वर कहां है ? और हम उन पुरखों की याद करते हैं जिन्होंने ईश्वर का दर्शन किया। और हम उन लोगों की मूर्तियां बनाकर मंदिरों में स्थापित किये हैं जिन्होंने ईश्वर को जाना। फिर मछलियों पर हंसना ठीक नहीं है। फिर मछलियों पर व्यंग्य करना ठीक नहीं है। फिर मछलियां भी ठीक ही पूछती हैं कि सागर कहां है ?

स्वाभाविक ही है, मछलियों को सागर का पता न चलता हो। क्योंकि जिससे हम कभी बिछुड़ते ही नहीं उसका पता ही नहीं चलता। अगर कोई आदमी जन्म से ही स्वस्थ हो मरने तक तो उसे स्वास्थ्य का कभी भी पता नहीं चलेगा। स्वास्थ्य का पता चलने के लिए बड़ी दुर्भाग्य की बात है कि

बीमार होना जरूरी है। स्वास्थ्य से टूटे, अलग हो जायें, तो ही स्वास्थ्य का पता चलता है।

और मैंने तो सुना है, और भगवान न करे कि यह बात आपके सम्बन्ध में भी सच हो। मैंने सुना है, बहुत से लोग जब मरते हैं तभी उनको पता चलता है कि वे जीते थे। क्योंकि जब तक मरें नहीं तब तक जीवन कैसे पता चल सकता है। जीवन के गणित का पहला रहस्यपूर्ण सूत्र यह है कि यहां जो सबसे ज़्यादा निकट है वह दिखायी नहीं पड़ता। यहां जो उपलब्ध ही है उसका पता नहीं चलता। जो दूर है उसकी खोज चलती है। जो नहीं मिला है उसके लिए हम तड़फते हैं और भागते हैं, दौड़ते हैं। और जो मिला ही हुआ है उसे भूल जाते हैं क्योंकि उसे याद करने का मौका ही नहीं आता है। परमात्मा का अर्थ—प्रभु का अर्थ—प्रभु का अर्थ है—वह जिसमें हम आते हैं और जिसमें हम चले जाते हैं। कोई नास्तिक भी ऐसे प्रभु को इन्कार नहीं कर सकता, क्योंकि निश्चित ही हम कहीं से आते हैं और कहीं चले जाते हैं। सागर पर लहर उठती है, और फिर वापस सागर में खो जाती है। तो लहर जहां से आती है और जहां खो जाती है वह भी होगा ही; और जब लहर नहीं थी तब भी था और जब लहर थी तब भी था और जब लहर नहीं रह जायेगी तब भी होगा। तभी तो लहर उससे उठ सकती है और उसी में खो सकती है। नास्तिक भी यही कह सकता कि हम कहीं से आते हैं और फिर कहीं खो जाते हैं। और भी एक बात ध्यान में रख लेने की है कि जहां से हम आते हैं वहीं हम खो जाते हैं। और कहीं खोयेंगे भी कैसे। लहर सागर से ही उठेगी तो सागर में ही तो विलीन होगी। और तूफान और आंधियां हवाओं में उठेंगी तो हवाओं में ही बिखर जायेंगी। और वृक्ष मिट्टी से पैदा होंगे, फूल खिलेंगे तो फिर बिखरेंगे

कहां ? खोयेंगे कहां ? वापस मिट्टी में गिरेंगे और खो जायेंगे ।

जीवन का दूसरा सूत्र आपको कहना चाहता हूं—जीवन के गणित का—वह यह है कि जहां से हम आते हैं, वहीं हम वापस लौट जाते हैं । उसको क्या नाम दें, जहां से हम आते हैं और जहां हम वापस लौट जाते हैं ? कोई नाम काम चलाने के लिए दे देना जरूरी है । उसी को प्रभु कहूंगा, जहां से हम आते हैं और जहां हम लौट जाते हैं । इसलिए मेरे प्रभु से किसी का भी झगड़ा नहीं हो सकता इस जमीन पर । न कभी हुआ है, न हो सकता है। क्योंकि प्रभु से मैं इतना ही मतलब ले रहा हूं—द ओरिजनल सोर्स, वह जो मूल आधार है । कहीं से तो हम आते ही होंगे । यह सवाल नहीं है कि कहां से ? कहीं से हम आते ही होंगे और कहीं हम खो जाते होंगे । और जहां से आना होता है, वहीं खोना होता । क्यों-कि जिससे हम उठते हैं, उसी में बिखर सकते हैं । हम और कहीं बिखर नहीं सकते । असल में जीवन जिससे हमने पाया है उसी को लौटा देना पड़ता है ।

प्रभु मैं उसको कहूंगा, इन आने वाले दिनों में उसकी व्याख्या कर लेनी ठीक है, अन्यथा पता नहीं आप प्रभु से क्या सोचें । उसकी व्याख्या कर लेनी ठीक है । प्रभु मैं उसको कहूंगा—वह जो मूल आधार है, मूल स्रोत है । जहां से सब निकलता है और सब खो जाता है । ऐसा प्रभु कहीं आकाश में बैठा हुआ नहीं हो सकता । ऐसे प्रभु की कोई सीमा नहीं हो सकती । ऐसे प्रभु का कोई व्यक्तित्व नहीं हो सकता, कोई आकृति, कोई रूप, कोई आकार नहीं हो सकता । क्योंकि जिससे सब आकार निकलते हों उसका खुद का आकार नहीं हो सकता है । अगर उसका भी अपना आकार हो तो उससे फिर दूसरे आकार न निकल सकेंगे ।

आदमी से आदमी पैदा होता है, क्योंकि आदमी का एक आकार है और आम के बीज से आम का पौधा पैदा होता है क्योंकि आम का बीज एक आकार है । पक्षियों से पक्षी पैदा होते हैं । सब चीजें अपने आकार से पैदा होती हैं । लेकिन ईश्वर से सब पैदा होता है इसलिए ईश्वर का कोई आकार नहीं हो सकता । वह आदमी के आकार का नहीं हो सकता है ।

यह आदमी की ज्यादती है, अन्याय है कि अपने आकार में उसने भगवान की मूर्तियां बना रखी हैं । यह आदमी का अहंकार है कि उसने भगवान को भी अपनी शक्ल में बना कर रख दिया है । यह आदमी का दम्भ है कि वह सोचता है कि भगवान होगा तो उसे आदमी जैसा ही होना चाहिए । फिर आदमी भी बहुत तरह के हैं, इसलिए बहुत तरह के भगवान हैं । चीनियों के भगवान के गाल की हड्डी निकली हुई होगी, नाक चपटी होगी । चीनी सोच नहीं सकते, भगवान की नाक और चपटी न हो । और नीग्रो के भगवान के ओंठ बड़े चौड़े होंगे, बाल घुंघराले होंगे और शक्ल काली होगी । नीग्रो सोच ही नहीं सकता कि गोरा भी भगवान हो सकता है ? गोरा और भगवान ? गोरा शैतान हो सकता है । गोरा भगवान कैसे हो सकता है ?

बहुत तरह के लोग हैं इसलिए बहुत तरह की शक्लों में भगवान का निर्माण कर लिया है ।

आदमियों के बनाये गये इस भगवान के सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं कहूंगा । मैं तो उस भगवान के सम्बन्ध में कहूंगा जो किसी का बनाया हुआ नहीं है, अनक्रिएटेड है—जिससे सब बनते हैं और जिसमें सब बिगड़ जाते हैं, लेकिन जो न कभी बनता है और न कभी मिटता है । आदमी अपनी शक्ल में भगवान को बना लेता है । अगर वृक्ष भगवान के सम्बन्ध

में सोचते होंगे तो भूलकर आदमी की शक्ल में न सोचते होंगे । आदमी तो उनको शैतान मालूम पड़ता होगा । वह न मालूम कब आकर दरख्तों की शाखाएं काट लेता है और न मालूम कब फल पक नहीं पाते और तोड़ लेता है । वृक्ष अगर सोचते होंगे तो आदमी की शक्ल में शैतान को सोचते होंगे । सारी जमीन से वृक्षों को काट डाला आदमी ने । वृक्ष कभी भी आदमी की शक्ल में भगवान को नहीं सोच सकते । और अगर वृक्षों के नीचे आदमी ने अपनी शक्ल में भगवान बिठा दिये होंगे तो वृक्ष बड़े नाराज होते होंगे कि शैतानों ने अपनी शक्ल भी यहां लगा रखी है । नहीं, वृक्ष के लिए सम्भव नहीं है कि वह आदमी की शक्ल में भगवान का विचार कर सकें ।

सारी दुनिया में भगवान के लिए झगड़ा इसलिए है कि हमने अपनी-अपनी शक्लों में उसे ढाल लिया है । इसलिए आदमी की शक्ल बदलती जाती है तो भगवान की शक्ल भी हमें बदलनी पड़ती है । रोज-रोज उसमें बदलाहट करनी पड़ती है । अगर पांच हजार साल पहले के भगवान को देखें तो उसकी शक्ल और है, उसके ढंग, रीति-रिवाज और हैं । वह पांच हजार साल पहले के आदमी की शक्ल में बनाया गया है । वह पांच हजार साल पहले का भगवान यह कहता है कि अगर कोई एक आंख फोड़ेगा किसी की तो हम उसकी दो आंख फोड़ देंगे । वह पांच हजार साल पहले का भगवान यह कहता है कि अगर किसी ने जरा सी गलती की तो नर्क की अग्नि में जलायेंगे उसको, सड़ायेंगे उसको । उस दिन किसी ने शक भी नहीं किया कि ऐसा कैसा भगवान है जो इस तरह की बेहूदी बातें बोलता है । असल में आदमी खुद ऐसी बातें उस समय बोल रहा था इसलिए उसे शक नहीं हुआ । उसने अपनी शक्ल में भगवान को बना लिया ।

फिर आदमी की समझ बढ़ी, और ऐसे आदमी हुए जिन्होंने कहा, जीसस ने जैसे कहा—अगर कोई तुम्हारे गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल उसके सामने कर देना । जब अच्छे आदमी का यह सबूत बना, अच्छे आदमी के लिए यह प्रमाण औ आदर्श बना कि कोई तुम्हारे गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल उसके सामने कर देना, तो भगवान को बदलना पड़ेगा अब । क्योंकि अच्छा आदमी जब इतना अच्छा आदमी है कि एक चांटा मारे जाने पर दूसरा गाल कर देता है तो उस भगवान के सम्बन्ध में हम क्या सोचें, जो कहता है कि अगर एक आंख किसी ने किसी की फोड़ी तो उसकी दो आंख फोड़ दी जायेंगी । और ईंट का जवाब पत्थर से दिया जायेगा । और नर्क की अग्नि में सड़ाया जायेगा । यह भगवान फिर बहुत कठोर मालूम पड़ेगा । यह तो आदमी से भी गया बीता मालूम पड़ेगा । इसमें क्षमा तो मालूम नहीं पड़ती है । यह भगवान, जिसने नर्क को ईजाद किया है, इस आदमी में क्षमा तो मालूम नहीं पड़ती ।

फिर हमें भगवान की शक्ल बदलनी पड़ती है । इसलिए हर युग भगवान की शक्ल बदलता है । पुरानी शक्लें आउट ऑफ डेट हो जाती हैं, पुरानी पड़ जाती हैं, इसलिए नयी शक्ल बनानी पड़ती है ।

भगवानों के भी बहुत फैशन रहे हैं दुनिया में । लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं कि वे हमेशा पुराने फैशनों से जकड़े रहते हैं । इसलिए दुनिया में इतने धर्म हो गये हैं । वे अलग-अलग युग के फैशन हैं । वे अभी-अभी तक पकड़े हुए हैं, लोगों को पकड़े हुए हैं ! इसलिए इतने धर्म हो गये हैं ।

लेकिन मैं इन भगवानों की बात नहीं करूंगा, क्योंकि ये कोई भगवान ही नहीं हैं । मैं तो उस प्रभु की बात करूंगा जो जीवन का मूल स्रोत है । मैं तो उस प्रभु की बात करूंगा,

जो जीवन ही है । और जीवन से अलग करके सोचना परमात्मा को, बड़ी भूल है ।

असल में हम प्रतीकों में सोचते हैं और प्रतीकों के कारण भूल हो जाती है । पुरानी से पुरानी किताबें यह कहती हैं कि जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है ऐसे ही भगवान जगत् को बनाता है । असल में जब यह बात कही गयी होगी तब कुम्हार सबसे बड़ा कारीगर रहा होगा ।

उससे बड़ा कोई कारीगर न रहा होगा । नहीं तो भगवान से कुम्हार की अगर कोई तुलना करता तो झगड़ा-झंझट हो सकता था । जिस समय की यह बात है, कम से कम दस हजार साल पुरानी बात होगी, उस समय कुम्हार सबसे बड़ा वैज्ञानिक, सबसे बड़ा कारीगर—जिसने मिट्टी का घड़ा बना दिया—रहा होगा । हमने भगवान को कुम्हार से तालमेल बिठा लिया। हमने कहा—भगवान ऐसा होना चाहिए जो सारी दुनिया को बनाता है, चाक पर चढ़ाता है और दुनिया को रचता है । असल में संसार शब्द का मतलब भी चाक ही होता है, द व्हील । संसार का मतलब होता है, कुम्हार का चाक । जैसे भगवान घड़े मिट्टी से गढ़ता रहता है, फिर घड़े मिटते जाते हैं, मिट्टी में चले जाते हैं । वह दूसरे घड़े बनाता रहता है। लेकिन इस प्रतीक ने बड़ा नुकसान पहुंचाया । और मनुष्य-जाति को कुछ बुनियादी भूलों में से एक भूल यह पकड़ गयी, यह प्रतीक । इससे एक खतरा हो गया । कुम्हार अलग है और घड़ा अलग है। इससे ऐसा लगा कि संसार अलग है और परमात्मा अलग है । यह प्रतीक खतरनाक सिद्ध हुआ ।

नहीं, मैं किसी दूसरे प्रतीक की बात करूं । क्योंकि मुझे यह प्रतीक उचित नहीं मालूम पड़ता । एक आदमी चित्र बनाता है। तो जब चित्रकार चित्र बनाता है तो चित्रकार

अलग होता है, चित्र अलग होता है । चित्र बनता जाता है और चित्रकार अलग होता जाता है । जब चित्र पूरा बन जाता है तो चित्रकार बिल्कुल अलग हो जाता है और चित्र की अपनी जिन्दगी शुरू हो जाती है। फिर चित्रकार मर जाये तो चित्र नहीं मरेगा और चित्रकार बीमार पड़ जाये तो चित्र बीमार नहीं पड़ेगा । और चित्रकार पागल हो जाये तो चित्र पर कोई असर नहीं पड़ेगा । चित्र का अपना अस्तित्व अलग हो गया । पुराने लोगों ने संसार और परमात्मा के बीच अब तक ऐसा ही सम्बन्ध सोचा था कि उसने संसार को बनाया और अलग हो गया । संसार का अपना अस्तित्व है, और वह अलग बैठ गया है । उसे हमें खोजना पड़ेगा कि वह कहां बैठ गया है ।

नहीं, मैं कोई दूसरा प्रतीक लेना चाहता हूं, ताकि मेरी बात ख्याल में आ सके । एक नृत्यकार, चित्रकार नहीं, एक नाचने वाला नर्तक है और नृत्यकार नाचता है । जब नृत्यकार नाचता है तो नृत्य और नृत्यकार अलग-अलग नहीं होते। और नृत्यकार अगर रुक जायेगा तो नाच भी रुक जायेगा । नृत्यकार मर जायेगा तो नाच भी मर जायेगा । और ऐसा नहीं है कि नर्तक को घर के बाहर छोड़ो और नाच को घर ले आओ । नर्तक और नृत्य एक हैं। चित्रकार और चित्र एक नहीं हैं, कुम्हार और घड़ा एक नहीं हैं । नर्तक और नृत्य एक हैं । इसे थोड़ा समझ लेना कि नर्तक जब नाच रहा है तब नृत्य है, जब नहीं नाच रहा है तो नृत्य नहीं है । नृत्य को अलग नहीं किया जा सकता ।

मेरे लिए प्रभु—मेरे लिए परमात्मा एक नर्तक है, चित्रकार नहीं है, कुम्हार नहीं है । सारा जीवन उसका नृत्य है। वह इससे अलग नहीं है । एक क्षण को भी अलग हो नहीं सकता है। हो जाये तो यह नृत्य बन्द हो जायेगा ।

इसलिए जब हमने पुराने प्रतीक के आधार पर परमात्मा को अलग कर लिया तो हमारी पूरी दिशा बदल गयी उसकी खोज के बड़े घातक परिणाम हुए। क्योंकि एक तो वह अलग था नहीं और हमने उसे अलग मानकर अलग खोजना शुरू कर दिया इसलिए उसका मिलना मुश्किल हो गया। वह कभी नहीं मिलेगा। अगर कोई नाचते हुए नृत्यकार को देखकर यह सोचे कि यह तो रहा नृत्य, अब नृत्यकार कहां है? तो मैं नृत्यकार को खोजने जाता हूं। तो वह कभी भी नृत्यकार नहीं खोज पायेगा, क्योंकि वह नृत्य में ही मौजूद है। वह नृत्य की जो लयबद्धता है वह उसमें भी मौजूद है। वह जो नृत्य की गति है, उसी में मौजूद है। हो सकता है, हमें घुंघुरू की आवाज सुनायी पड़ती है और हाथ-पैर की गति दिखायी पड़ती है और नृत्यकार दिखायी भी नहीं पड़ता क्योंकि नृत्य बहुत तेज है। लेकिन हम कहते हैं कि यह तो नृत्य रहा, नृत्यकार कहां है? तो हम नृत्यकार खोजने निकल जायें तो कभी नृत्यकार को न खोज पायेंगे। क्योंकि वह वहीं था, नृत्य में, नाच में।

आदमी ने जो प्रतीक चुन लिया एक बार कि परमात्मा अलग और संसार अलग, उससे सब गड़बड़ हो गयी। जो खोजने गये वह खोज न पाये क्योंकि वह खोजते गये। जो उसे खोजने गये उन्होंने संसार की तरफ पीठ कर ली। फिर खोजने गये क्योंकि उन्होंने कहा संसार तो अलग है भगवान से, हम तो भगवान को खोजने जाते हैं। तो उन्होंने फूलों पर आंख बन्द कर ली; उन्होंने तितलियां पर आंख बन्द कर ली; उन्होंने पक्षियों के गीतों को कान बन्द कर लिए; उन्होंने वृक्षों को देखना बन्द कर लिया; उन्होंने हवाओं से दोस्ती छोड़ दी; पृथ्वी से सम्बन्ध तोड़ लिया; उन्होंने मनुष्यों की तरफ पीठ फेर ली—उन्होंने सब तरफ से अपने को बन्द

कर लिया। उन्होंने कहा—यह तो संसार है, हम तो भगवान को खोजने जाते हैं। बस वे कहीं खोजने नहीं गये, वे सिर्फ आंख बन्द करके मरने लगे। वे आंख बन्द करके अपने भीतर खत्म होने लगे और सड़ने लगे। वह था यहीं, सबमें मौजूद था। लेकिन हमने जो सोचा, उसमें भूल हो गयी।

तो एक तो भूल यह हुई कि जो उसे खोजने गये वे उसे खोज न पाये। फिर दूसरी भूल यह हुई कि कोई खोजने चला जाये तो मनुष्य का मन अगर खोज ही न पाये, खोज ही न पाये, तो आखिर मनुष्य के मन के पास एक उपाय है कि जब वह बिल्कुल हार जाये; न खोज पाये, न खोज पाये तो वह कल्पना कर ले और पा ले। अगर आप दिन भर भूखे रहे हैं और भोजन नहीं खोज पाये हैं तो रात सपने में भोजन कर लेंगे। एक आदमी किसी को प्रेम करता है और उसे न उपलब्ध कर पाये तो पागल हो जायेगा। और फिर उपलब्ध कर लेगा पागल होकर। वह उसी से बातें करने लगेगा, उसी के साथ जीने लगेगा। फिर सारी दुनिया से उसे मतलब न रहा उसे अपनी प्रेयसी मिल गयी, अपना प्रेमी मिल गया। उसने अब कल्पना कर ली। मन ने एक सुविधा जुटायी है आदमी को, कि जिसे हम न खोज पायें, उसे भी सपने में जिया जा सकता है।

जो लोग ईश्वर को इस भांति खोजने गये और नहीं खोज पाये, फिर उन्होंने अपना कल्पित ईश्वर खड़ा कर दिया। फिर वे उससे बातें करने लगे, उसके साथ खेलने लगे, नाचने लगे, कुछ करने लगे। वे सारी की सारी बातें एकदम विक्षिप्तता की बातें हैं मन की रुग्णता की बातें हैं, मन के सपनों की बातें हैं। उनसे परमात्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है।

दूसरा दुष्परिणाम यह हुआ कि जिन लोगों ने खोजबीन

की और नहीं पाया, उन्होंने कहा, ईश्वर है ही नहीं। हम खोजते ही गलत चले गये। हम फिजूल मेहनत में पड़ गये। यह कहीं है ही नहीं, सब खोज लिया। योग देखा, प्रार्थना देखी, ध्यान देखा, साधना की, तप किया, उपवास किया, कहीं भी नहीं है। उन लोगों ने कहना शुरू किया, ईश्वर है ही नहीं।

इस जगत् में दो तरह के धार्मिक लोग हुए—एक, जिन्होंने कल्पना कर ली ईश्वर की। और एक, जिन्होंने इन्कार ही कर दिया। ये दोनों बातें महंगी और खतरनाक हो गयी हैं। जबकि ईश्वर यहां मौजूद था, सदा से मौजूद है। नृत्य में नृत्यकार मौजूद है, उसे नृत्य में ही खोजना पड़ेगा। और नृत्य में खोजने का एक ही ढंग है कि हम नृत्य से भागें न। हम नृत्य के प्रति जागें, हम नृत्य को पहचानें। और जितना हम नृत्य को पहचानेंगे और जितना गहरा उसमें प्रवेश करेंगे उतना ही नर्तक उपलब्ध होने लगेगा। धीरे-धीरे नृत्य तो खो जायेगा, नर्तक रह जायेगा।

धीरे-धीरे हम जानेंगे, नर्तक ही सत्य है—नृत्य तो खेल था, नृत्य तो लीला थी। लेकिन नृत्य में ही छिपा है और बड़ा विराट नृत्य है। और एक बात और ख्याल रख लें कि नृत्य कुछ ऐसा है कि हम भी उसके बाहर नहीं हैं, हम भी उस नृत्य में ही हिस्से हैं।

तो मैं एक दूसरी बात और कहना चाहता हूं; मामला कुछ ऐसा नहीं है कि नर्तक को कोई दूसरा खोजने निकला है। मामला ऐसा है कि नर्तक का हाथ ही उत्सुक हो गया है कि मैं जानूं कि नर्तक कहां है। हम कुछ अलग अगर नृत्य के होते तो आसानी हो जाती। हम भी नृत्य के हिस्से और भाग हैं। जैसे कि नाचने वाले का हाथ ही पूछने लगे कि नर्तक कहां है? जैसे नाचने वाले का हाथ ही खोजने लगे कि

नर्तक कहां है। जैसे नाचने वाले की आंखें ही पूछने लगें कि नर्तक कहां खो गया है? नृत्य तो दिखायी पड़ गया है, नर्तक कहां है। हम उसके ही हाथ और उसकी ही आंखें हैं। हम कुछ चाहें तो भी उससे अलग नहीं हो सकते। असल में जिससे हम चाह कर भी अलग नहीं हो सकते वही परमात्मा है।

लोग मुझसे कहते हैं; परमात्मा को कहां खोजें? मैं उनसे कहता हूं, कि पहले मुझे यह बताओ कि तुमने उसे खोया कब और कहां? क्योंकि खोजा उसे जा सकता है जिसे खो दिया हो। परमात्मा को हम खो ही नहीं सकते। उपाय नहीं खोने का, मार्ग नहीं खोने का। हम कैसे खोयेंगे। ज्यादा से ज्यादा हम भूल सकते हैं, खो नहीं सकते। भूलना और खोने में बड़ा फर्क है। हम भूल सकते हैं। भूल तो हम अपने तक को सकते हैं। भूल ही गये हैं।

पिछले महायुद्ध में ऐसा हुआ कि एक आदमी युद्ध के मैदान पर था, चोट खा गया गोली की। बेहोश हो गया और जब होश आया तो अपने को भूल चुका था। उसे अपना नाम याद न रहा। लेकिन सैनिकों को कोई नाम की खास जरूरत भी नहीं होती, उनके नम्बर से पता चल जाता है। लेकिन युद्ध में उसका नम्बर भी कहीं गिर गया। जब वह लाया गया स्ट्रेचर पर तो उसका नम्बर नहीं था। जब वह होश में आया, उससे पूछा गया कि तेरा नाम क्या है तो उसने कहा—यही मैं आपसे पूछना चाहता हूं। मेरा क्या नाम है? मैं किसका बेटा हूं, मैं किसका पति हूं, मैं किसका पिता हूं, मैं हूं कौन? मेरा नम्बर क्या है? मैं किस रेजिमेंट का हूं पहले तो लोगों ने समझी मजाक है लेकिन वह मजाक न थी। उसके तो मस्तिष्क को चोट लग गयी थी, वह भूल गया था। फिर तो बड़ी मुश्किल हुई। कोई उपाय न रहा कि कैसे पता लगे कि वह कौन है। न मालूम कितने लोग मर चुके थे। न

मालूम कितने लोग युद्ध में खो चुके थे। यह आदमी कौन है, यह है कौन ? इसका कैसे पता लगे ? फिर किसी ने सुझाव दिया कि इसे गांव-गांव में घुमाया जाये। अपने गांव को शायद यह पहचान ले। उसे गांव-गांव में ले जाया गया। वह स्टेशन पर उतर कर खड़ा रह जाता और देखता रहता और लोगों को देखता, लेकिन उसे कुछ पहचान में न आता। फिर तो थक गये उसे घुमाने वाले। लेकिन एक नगर में, जैसे ही वह स्टेशन पर उतरा, उसने कहा—यह मेरा गांव है। वह तो भागने लगा, वह तो उनके लिए रुका भी नहीं। जो उसके साथ आये थे, उन्होंने कहा—रुको भी। वह भागा और सीढ़ियां पार कर उतर गया था। वे उसके पीछे भागे। वह तो भागा जाता था और कहता, अरे मेरा गांव ! मेरी गली, मेरा घर, मेरी मां। वह जाकर अपनी मां के पैरों पर गिर पड़ा। उसके साथी भागे हुए पीछे पहुंचे। उसके साथियों ने कहा—तुम तो बिल्कुल खो ही गये थे, तुमने कैसे खोज लिया ? उसने कहा, खो नहीं गया, खो गया होता तो फिर खोजना मुश्किल था। सिर्फ भूल गया था। उसकी याद आ गयी।

परमात्मा की खोज नहीं करनी है, सिर्फ याद करनी है। लेकिन याद के नाम से भी बड़े धोखे चल रहे हैं। उसको लोग 'प्रभु स्मरण' कहते हैं। कोई राम-राम जपता है, वह कहता है—प्रभु स्मरण कर रहे हैं। कोई कुछ और कर रहा है, कोई कुछ और कर रहा है, वह कहता है हम—स्मरण कर रहे हैं। स्मरण शब्द बहुत कीमती है। ऐसे तोतों की तरह नाम जपने से कोई स्मरण नहीं होता है। स्मरण का मतलब है रिमेम्बरिंग। स्मरण का अर्थ है स्मृति, उसकी याद आ जानी। लेकिन राम-राम जपने से उसकी याद कैसे आ जायेगी ? और अगर आ गयी है याद तो अब क्यों जपे चले जा रहे हैं ? अगर

राम कहने से याद आ सकती तो एक दफा कहने से आ जाती और जब एक दफा कहने से नहीं आयी तो दूसरी दफा कहने से कैसे आ जायेगी, तीसरी दफा कहने से कैसे आ जायेगी ? लेकिन लाख-लाख, दो-दो लाख, करोड़-करोड़ जप कर रहे हैं लोग, हिसाब रख रहे हैं। एक करोड़ बार चिल्ला चुके और अभी याद नहीं आयी। अभी वह कह रहे हैं, अगले साल फिर एक करोड़ जप करेंगे।

मैं एक गांव में गया था, वहां एक लाइब्रेरी बनायी हुई है। एक सज्जन आदमी ने—और सज्जनों की तो कमी नहीं है हमारे देश में—उनका काम ही यह है, उन्होंने जीवन अर्पित कर दिया है इसके लिए कि न मालूम कितने लोगों को लगाकर वह राम-राम लिखवाते रहते हैं। और वे किताबें भर गयी हैं; बहियें भर गयी हैं; हजारों-लाखों कापियां भर गई हैं। और सारे हिन्दुस्तान में उनके भक्त हैं, जो राम राम राम राम लिखकर वहां भेजते रहते हैं और वहां वह लाइब्रेरी बढ़ती जाती है। कहते हैं, इतने अरब हो गये हैं नाम, इतने खरब हो गये हैं नाम। वह मुझे भी ले गये वहां। मैंने कहा—नाम कितने ही खरब हो गये, याद आयी कि नहीं ? नाम लिखने से कैसे याद आ जायेगी। सच तो यह है कि जिसकी हमें याद ही नहीं है, उसका नाम भी हमारे पास कैसे हो सकता है, नाम भी हमारे पास कैसे हो सकता है। राम को कौन कहता है कि उसका नाम है। कैसे पहचाना, कौन-सा प्रमाण पत्र है ? कौन कहता है कि अल्लाह उसका नाम है ? कौन कहता है कि खुदा उसका नाम है ? कैसे पहचान लिया है ? यह नाम कैसे पहचान गये ? याद आ जाये तो शायद नाम भी आ जाता लेकिन याद तो आयी नहीं और हम नाम से याद लाने की कोशिश करते हैं।

नहीं, प्रभु-स्मरण का बहुत और ही मतलब है। प्रभु-स्मरण

का मतलब-राम की रटंत लगानी नहीं है। प्रभु-स्मरण नाम की रटंत नहीं है। प्रभु-स्मरण का अर्थ है—यह जो नृत्य चल रहा है; यह जो जीवन की विराट लीला चलती है; इसके प्रति हम बोधपूर्ण हो जायें। यह हमें दिखायी पड़ने लगे; यह हमें अनुभव होने लगे; इसकी हमें प्रतीति होने लगे कि यह हो रहा है। जब फूल खिले तो ऐसे ही न खिल जाये, हमें फूल खिलता हुआ मालूम पड़े। जब आकाश में बादल चलें तो ऐसे ही न गुजर जायें बिना पहचाने, हम उन्हें देख सकें और पहचान सकें। हमारे पास से जब कोई गुजरे तो ऐसे ही न गुजर जाये, उसके भीतर जो है उसका थोड़ा-सा स्पर्श हमें हो सके। और जिन्दगी में चारों तरफ 'वह' मौजूद है। उसके स्मरण का मतलब बहुत दूसरा है। उसके स्मरण का मतलब इस बात का बोध है कि हम जिससे आये हैं वह चारों तरफ मौजूद है।

और इसे हम समझ पायें तो इस बोध में कोई कठिनाई नहीं है। हमने उसे खो नहीं दिया है। हम उसे कितना ही खो दें, वह तो हमें खोता ही नहीं है। असल में जिन्दगी में जो भी महत्त्वपूर्ण है परमात्मा ने हमें स्वयं याद रखने की जरूरत नहीं समझी है। श्वास चलती रहती है, आपको याद रहे न रहे, अगर आपके याद रखने के साथ चलती हो तो जिन्दगी में कई दफे आदमी मर जा सकते हैं। आपको याद रखने की जरूरत नहीं, श्वास चलती रहती है, चलती रहती है। आप भूल जाते हैं तो भी चलती रहती है। बल्कि सच तो यह है कि आपकी स्मृति और आपके श्वास का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। आप खाना खा लेते हैं और पचा लेते हैं और पचाने का आपको कभी पता नहीं चलता है और बड़ा काम पेट में चलता रहता है। वैज्ञानिक तो कहते हैं कि इतनी बड़ी फैक्ट्री एक आदमी के पेट में लगी है कि अगर हम इतना इन्तजाम—रोटी से खून बनाने का इन्तजाम—अगर बाहर करें तो कई मील के घेरे

में हमें इन्तजाम करनी पड़ सकती है, और इतना शोरगुल मचे जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन हमारे भीतर वह चुपचाप काम चलता है।

इतना अद्भुत है जगत् कि इसमें बड़े से बड़े तारे पैदा हो जाते हैं और विलीन हो जाते हैं। उनसे शोरगुल भी नहीं होता। जिन्दगी में जो भी महत्त्वपूर्ण है, वह आपके बिना जाने चुपचाप चल रहा है। लेकिन अगर हमें उसका स्मरण आ जाये जो जिन्दगी में चारों तरफ चुपचाप चल रहा है; अगर उसकी पग ध्वनि हमें सुनायी पड़ने लगे जो हमारे पास से गुजर रहा है, तो उस प्रभु का स्मरण होता है। और तब बैठ कर हम कोई नाम नहीं जपने लगेंगे और बैठकर हम कोई माला न फेरने लगेंगे, क्योंकि ये सब बातें बहुत ऊपरी हैं; बहुत ही बुद्धिहीनता की हैं। और इनको करने से कोई बुद्धिहीन और ज्यादा से ज्यादा बुद्धिहीन ही हो सकता है, और कुछ नहीं हो सकता है।

इसलिए जो कौम इस तरह के काम पकड़ लेती है उसकी बुद्धि और प्रतिमा धीरे-धीरे खो जाती है और जंग खा जाती है। प्रभु का स्मरण तो चौंका देगा, जगा देगा। ज्यादा जीवन्त हो जायेंगे आप। सब चीजों में रंग-रस बदल जायेगा। सब कुछ और हो जायेगा। जिन्दगी बहुत अर्थपूर्ण, रसपूर्ण नृत्य से भर जायेगी; एक संगीत का अर्थ आ जायेगा। जिन्दगी आपको पहली दफे ऐसी लगेगी जैसे फूटी भीतर से, जैसे कोई बीज फूटता है और अंकुर बन जाता है; कोई कली टूटती है और फूल बन जाती है; और कोई वीणा के तारों को छेड़ देता है और सन्नाटा बन्द हो जाता है। और चारों तरफ वीणा के स्वर गूंज जाते हैं। ठीक जब प्रभु का स्मरण आयेगा तो आपकी वीणा के तार गूंज उठेंगे, आपकी कली टूट कर फूल बन जायेगी; आपका बुझा दिया अचानक लपट लेकर जल उठेगा। आप

पायेंगे, आप बिल्कुल दूसरे आदमी हो गये हैं। तब बैठकर राम-राम नहीं जपते रहेंगे, तब आप पायेंगे कि हर जगह तो वही मौजूद है। पुकारें किसको ? वही मौजूद है। कौन किसको पुकारे ? क्योंकि मैं भी वही हूं।

और तब जिन्दगी एक नया अर्थ लेकर, एक नयी गति लेकर चलना शुरू हो जायेगी। यह जिन्दगी एक धार्मिक आदमी की जिन्दगी है—आनन्द से भरी, अमृत से भरी, शांति से भरी, प्रेम से भरी। उसका कण-कण आनन्द है। फिर दुख नहीं है। क्योंकि फिर दुख भी आनन्द है। फिर कांटे नहीं हैं क्योंकि फिर कांटे ही फूल हैं। फिर मृत्यु नहीं है क्योंकि फिर मृत्यु ही एक और बड़े जीवन में प्रवेश है।

इस प्रभु की बात करना चाहूंगा, इन चार दिनों में। और बात ही क्यों ? इस अकेली बात से क्या होगा ? बातें तो हम बहुत कर चुके, बहुत सुन चुके और कई बार तो ऐसा हो जाता है कि बातें सुनना भी एक रोग हो जाता है, हम सुनते चले जाते हैं, सुनते चले जाते हैं। फिर सुनना भी एक रस हो जाता है। लेकिन सुनने से वीणा कैसे निकलेगी। आप खाने के सम्बन्ध में बातें नहीं सुनते हैं, खाना खाते हैं। और परमात्मा के सम्बन्ध में सिर्फ बातें सुनते हैं। आप सोने के लिए बिस्तर पर जाते हैं। सोने के सम्बन्ध में किताब नहीं पढ़ते। हां, कुछ लोग पढ़ते हैं, जिनको नीद नहीं आती। कुछ लोग हैं, कुछ अभागे लोग हैं, जिनको नींद जैसी सरल चीज भी असम्भव हो गयी है। वे जरूर किताबें पढ़ते हैं। वे किताबें पढ़कर खोजते हैं कि कैसे सो जायें। हमें हंसी आती है क्योंकि हम ऐसे ही सो जाते हैं। हम बिस्तर पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं, कुछ और नहीं करना होता है। लेकिन जो नहीं सो पाता है, उससे पूछिये। क्या नींद इतनी आसान है ? बल्कि उसे हैरानी होती है कि लोग कहीं धोखा नहीं दे

रहे हैं कि कहते हैं—बिस्तर पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं। मैंने तो बहुत दफा सिर रखा है बिस्तर पर। नींद का तो कोई पता नहीं चलता है। हजारों उपाय करो, नींद नहीं आती है। करवटें बदलो, भगवान को स्मरण करो, मालाएं फेरो, हाथ-पैर धोओ, यह करो, वह करो, गरम दूध पियो, गरम पानी से स्नान करो—कुछ नहीं होता, नींद आती नहीं। सब उपाय करता हूं, नींद नहीं आती। और लोग कहते हैं कि हम बस तकिये पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं। पता नहीं, सारी दुनिया धोखा तो नहीं दे रही है कि आंख बन्द करके लोग पड़े हैं। जिसको नींद नहीं आती, उसको शक आता है। लेकिन उस बेचारे को पता नहीं। उसे यह पता ही नहीं कि नींद न तो किताब पढ़कर लायी जा सकती क्योंकि सिर्फ किताबें पढ़ने से नींद में बाधा पड़ सकती है।

और न नींद किसी उपाय से लायी जा सकती, क्योंकि कोई भी उपाय श्रम है, और श्रम नींद में बाधा है। न माला फेरने से नींद लायी जा सकती क्योंकि माला फेरना भी जागने का काम है। और जो भी जागने का काम है उससे नींद में बाधा पड़ेगी। राम-राम जपने से भी नींद नहीं आ सकती, बल्कि जपने से और नींद टूट सकती है। नींद आयेगी कैसे। कोई उपाय नींद नहीं ला सकता। लेकिन वह आदमी कहेगा, फिर भी मैं सोना चाहता हूं।

लेकिन हम परमात्मा के सम्बन्ध में किताबें पढ़ते हैं, उपाय करते हैं। लेकिन परमात्मा में जीना चाहते हैं, तब तो कुछ और भी करना पड़ेगा। अकेली बात काफी नहीं है। बात कुछ खबर ला सकती है; बात कुछ प्यास जगा सकती है; बात कहीं आप झपकी ले रहे हो तो चौंका सकती है। लेकिन चलना पड़ेगा। यात्रा करनी पड़ेगी, कुछ करना पड़ेगा। और कितना आश्चर्यजनक है—उसे पाने के लिए कुछ करना पड़ेगा,

जिसे हमने कभी खोया ही नहीं।

लेकिन मैंने कहा कि जीवन के गणित का यह सूत्र है कि जो निकट है वह भूल जाता है और परमात्मा हमारे निकटतम है, इसलिए बिल्कुल भूल गया है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है, यह तर्कयुक्त है। अगर मैं आपसे कहूं कि जरा आंख बन्द करके अपनी मां की तस्वीर याद करिए तो आप सदा सोचते रहे होंगे कि मां की तस्वीर मुझे भली-भांति याद है। लेकिन आंख बन्द करके जब मां की तस्वीर को ख्याल करने बैठेंगे, तो रेखाएं बिखर जायेंगी, चेहरा बनाना मुश्किल होगा। मां को जिसको पहले दिन से देखा, जिसकी तस्वीर सबसे ज्यादा निकट थी; वह भी बिखर जायेगी। कोई अभिनेत्री की तस्वीर याद भी आ सकती है, साफ-साफ दिखायी पड़ती है, लेकिन मां की तस्वीर बिखर जायेगी। असल में हम इतने निकट रहे हैं कि फिर हमनें मां को देखने की जरूरत भी नहीं समझी। हम उसके इतने हिस्से थे कि हमने उसे गौर से कभी देखा नहीं। कभी आपने अपनी मां को गौर से देखा है? नहीं, हम, जो निकट है, उसे गौर से देखते ही नहीं। और परमात्मा तो हमारा निकटतम है। निकटतम भी शब्द ठीक नहीं है। हम वही हैं। उसके साथ एक ही हैं इसलिए निकटतम कहना भी ठीक नहीं है। वही हम हैं सो उसे तो हम बिल्कुल ही भूले हुए हैं। उसका तो हमें कुछ पता ही नहीं है।

इसका पता लगाने हम कहां जायें, हिमालय पर? काशी, मक्का, मदीना—कहां जायें? और अगर परमात्मा यहां नहीं मिलता जूनागढ़ में, तो हिमालय पर कैसे मिल जायेगा? मैं ही खोजने वाला, जूनागढ़ से हिमालय चला जाऊंगा, जो यहां हूं वहां होऊंगा। जगह बदल जायेगी झाड़ बदल जायेंगे, हवाएं बदल जायेंगी, सूरज की रोशनी कम ज्यादा पड़ेगी, ठण्डक होगी, गर्मी होगी, कुछ फर्क होंगे, झरने होंगे—मैं तो वही

होऊंगा जो यहां हूं। और मैं उसे यहां नहीं खोज पाऊंगा तो वहां कैसे आ जायेगा। अगर मुझे उसका स्मरण यहां नहीं आता तो वहां कैसे आ जायेगा।

रवीन्द्रनाथ ने एक बहुत अद्‌भुत गीत लिखा है और गीत में वहां व्यंग्य करवाया है; बुद्ध की पत्नी यशोधरा से। बुद्ध लौट आये हैं वापस, बारह वर्षों की खोज करने के बाद। घर आये हैं। तो रवीन्द्रनाथ ने अपने गीत में बुद्ध की पत्नी से कहलवाया है कि मुझे और कुछ भी नहीं पूछना है, मुझे एक ही बात पूछनी है कि जो तुम्हें वहां जंगल में जाकर मिला, वह क्या यहां मौजूद नहीं था? इतना ही मुझे बता दो, बाकी मुझे कुछ भी नहीं पूछना है। वह जो तुम्हें बारह वर्ष जंगलों में खोजकर मिला, वह इस घर में क्या मौजूद नहीं था? और बुद्ध चुप रह गये। जवाब देना मुश्किल है। बुद्ध को भी जवाब देना मुश्किल है क्योंकि बात तो यही सच है कि जिसे वे खोज कर आये हैं वह यहां भी था। और जिस खोजने के ढंग से उन्होंने वहां खोजा है उसी खोजने के ढंग से वह यहां भी खोजा जा सकता था। इसलिए सवाल खोजने वाले ढंग और खोजने वाले आदमी का है, खोजने वाली जगह का नहीं।

लेकिन हजारों साल से हम सोच रहे हैं कि वह कहीं और जाकर खोजना पड़ेगा। और यह क्यों सोच रहे हैं? यह इसलिए सोच रहे हैं कि हम सदा से मान कर बैठे हैं कि जिन्दगी से कहीं दूर है, जीवन से कहीं और है, जीवन से भिन्न। न केवल इतना ही, बल्कि कुछ नासमझों ने तो हमें यह भी सिखा दिया है कि जीवन की बिल्कुल शत्रुता में मिलेगा। जब तक हम जीवन के पक्के दुश्मन न हो जायें; यानी दुश्मनी इस तरह की न कर लें कि लोग अगर पैर के बल चलते हैं तो हम सिर के बल, शीर्षासन न लगायें तब तक वह नहीं

मिलेगा। दुश्मनी पक्की करनी है और लोगों से बिल्कुल उल्टे हो जाना है। लोग जो करते हैं वह जिन्दगी का जो रास्ता है उससे उल्टे चले जाना तब वह मिलेगा।

बड़ी हैरानी की बात है, जिन्दगी से अगर इतनी दुश्मनी हो तो जिन्दगी के होने का मतलब क्या है। अगर जिन्दगी से वह इतना नाराज है, तो है क्यों? और अगर जिन्दगी इतनी बुरी है तो वह क्यों इसे बढ़ाये चला जाता है? क्यों इसे जिन्दगी दिये चला जाता है? क्यों ये श्वासें आती हैं और जाती हैं? और क्यों ये जन्म हैं? और क्यों ये फूल खिलते हैं? और क्यों ये बीज बन जाते हैं?

...अगर जिन्दगी इतनी बुरी है, जिसे महात्मा कहते हैं, तो परमात्मा बड़ा नासमझ है। या तो महात्मा ठीक है या परमात्मा ठीक है। दोनों में से चुनाव करने का वक्त आ गया है। अगर महात्मा ठीक है तो परमात्मा बिल्कुल गलत है क्योंकि वह जिन्दगी को रोज जन्म दिये जा रहा है। वह काम रोकता ही नहीं। वह कभी का काम रोक सकता था। वह कभी का लॉक आउट कर देता। लगा देता—तालाबंदी, कर देता, हड़ताल कर देता, कुछ भी तो कर सकता था। वह कभी का बन्द कर देता—कि जिन्दगी अब बस बहुत हो गयी, जिन्दगी बन्द कर देते हैं।

वह है कि नाचे चला जाता है। वह है कि उसकी अतृप्ति का अन्त ही नहीं है। वह तृप्त ही नहीं होता। वह कहता है, बुद्ध भी बना लिए, ठीक है, लेकिन और बेहतर आदमी बनाना है। राम बना लिया, ठीक है, लेकिन उससे और बेहतर आदमी बनाना है। कृष्ण आ गया ठीक है, लेकिन और बढ़िया बांसुरी बजाने वाला पैदा करेंगे। तृप्त ही नहीं होता। वह कहता, हम रोज नया मॉडल, वह आदमी को रोज नया बनाये चला जाता है। उसकी अतृप्ति का कोई अन्त

नहीं है। इसलिए पुराना दुबारा नहीं बनाता। इसलिए राम को फिर से नहीं बनाता, ऐसी भूल नहीं करता वह। इसलिए कृष्ण को दुबारा नहीं बनाता।

क्योंकि दुबारा सिर्फ वे ही बनाते हैं जिनमें मौलिकता की कमी है। जो ओरिजनल नहीं हैं। जो मौलिक नहीं हैं। एक आदमी एक गीत लिख लेता है, फिर उसी गीत को लौट-लौट कर दोहराये चला जाता है, फिर नयी-नयी कड़ियों में उसी को बांधता रहता है। एक आदमी एक चित्र बना लेता है, फिर घूम-फिर कर वही चित्र बनाये चला जाता है। फिर जिन्दगी-भर वह वही करता रहता है, वही चित्र दोहर-दोहर कर आता रहता है। एक आदमी एक कहानी लिख लेता है, फिर बस वही कहानी, वही प्लॉट, वह फिर बार-बार लिखे चला जाता है—नाम बदल देता है, थोड़ी घटना बदल देता है, लेकिन वही।

लेकिन ईश्वर बहुत अद्भुत है। कितने अरब-खरब, लोग जमीन पर पैदा होते हैं लेकिन एक-एक आदमी अनूठा और अलग है और अद्वितीय है, यूनिक है। दुबारा दोहरता नहीं है एक ही आदमी। रिपीटिशन है ही नहीं वहां। अभी भी तीन साढ़े तीन अरब आदमी जमीन पर हैं, खोजने जायें तो एक जैसे दो आदमी न मिलेंगे। आदमी तो बहुत दूर की बात है, दो एक जैसे पत्ते भी न मिलेंगे खोजने से। एक आम का पत्ता तोड़ लें, और खोजने चले जायें। तो दूसरा पत्ता न मिलेगा ठीक वैसा।

उसकी सृजनात्मकता बड़ी मौलिक है, वह रोज नये को पैदा किये चले जाता है। लेकिन आदमी? आदमी कहता है—राम जैसे बन जाओ; बुद्ध जैसे बन जाओ; महावीर जैसे बन जाओ। आदमी बड़ा अमौलिक है। आदमी बड़ा रूढ़िग्रस्त है। वह कहता है ठीक है, चलो, राम हो गये तो

अब राम जैसे ही बन जाओ। नये की क्या जरूरत है ?

लेकिन परमात्मा नये की खोज में निरन्तर लगा हुआ है और महात्मा सदा पुराने की खोज में लगे हैं। वे कहते हैं—हमारी किताब जितनी ज्यादा पुरानी उतनी अच्छी और परमात्मा रोज नये को पैदा करता है। वह बूढ़े को विदा कर देता है और बच्चे को खड़ा कर देता है। वह कहता है—अब आप हट जाइए आप काफी पुराने हो गये। अब आप जरा मंच के पीछे आ जाइए। बड़ा नासमझ है! एक अर्थ में नासमझ है। नासमझ इन अर्थों में कि बूढ़ा तो इतना अनुभवी था कि उसको हटाकर गैर-अनुभवी जरा से बच्चे को उसकी जगह दे रहे हो। बूढ़े ने तो जिन्दगी भर इतना अनुभव से, ज्ञान से सीखा था; इकट्ठा किया था; इतना समझ पाया था—उसको विदा कर रहे हो। एक बिल्कुल अपरिचित अनजान बच्चे को ला रहे हो जिसका कुछ भरोसा नहीं कि अच्छा होगा कि बुरा होगा, कि क्या करेगा क्या नहीं करेगा, चोर होगा, बेईमान होगा, साधु होगा, असाधु होगा—कुछ पता नहीं। एक अबोध बच्चे को रख रहे हो उसकी जगह हटा कर।

लेकिन परमात्मा नये को प्रेम किये चला जाता है। वह कहता है—जो भी पुराना हो जाता है वह वापस हो जाता है। नये में जीवन है, पुराने में मृत्यु है। जो पुराना है, अर्थात् वह मर रहा है, मर गया है, मरने के करीब पहुंच गया है। नया, अर्थात् जो अभी जियेगा, जन्मेगा, फैलेगा, बढ़ेगा, फलेगा, फूलेगा...आगे और आगे।

तो महात्मा कहते हैं कि जीवन के विरोध में है धर्म। वे कहते हैं कि जीवन को छोड़ दो तो ही धार्मिक हो सकते हो। और मेरा मानना है कि इसी शिक्षा के कारण पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पायी क्योंकि जीवन को छोड़ना असम्भव है। जो

भाग जाते हैं छोड़कर वे भी छोड़ते नहीं। फिर नयी शक्लों से, नये दरवाजों से जीवन में वापस लौट आते हैं। घर छोड़-कर भागते हैं, फौरन एक आश्रम बनाते हैं और अब आश्रम में और घर में सिवाय बोर्ड के और कोई फर्क नहीं है। इधर बेटे-बेटियां, पति-पत्नी को छोड़कर भागते हैं उधर चेला और चेलियां, शिष्य और शिष्याएं इकट्ठा कर लेते हैं।

ये सब नामों के रूपान्तरण हैं। इसमें कोई भी फर्क नहीं है। बाप अपने बेटों के लिए जितना चिन्तित होता है गुरु अपने शिष्यों के लिए उससे ज्यादा चिन्तित रहता है। बाप को अपने बेटों को बिगड़ जाने का जितना भय सताता है, गुरुओं का अपने शिष्यों के बिगड़ जाने का उससे ज्यादा भय सताता है। एक तरफ से दरवाजा जीवन का बन्द करते हैं, जीवन का झरना दूसरी तरफ से टूटकर बहना शुरू हो जाता है। वह नयी-नयी शक्लों में खोज लेता है। लेकिन बहि-जिन्दगी से कोई भाग नहीं सकता। क्योंकि जिन्दगी से भागना असम्भव है। हम जहां भी जायेंगे, जिन्दगी वहां है। हम सिर्फ जिन्दगी की शक्लें बदल सकते हैं, रूप बदल सकते हैं, द्वार बदल सकते हैं, जिन्दगी से भाग नहीं सकते। हम यह कर सकते हैं कि हम यह कपड़े न पहनें, हम गेरवे रंग से रंग लेंगे। लेकिन वह गेरुवा रंग उतना ही जिन्दगी का हिस्सा है जितना कोई और रंग। और गेरुवे वस्त्र जिन्दगी के लिए उतने ही आनन्दपूर्ण हो सकते हैं जितने कोई और रंग। इससे क्या फर्क पड़ता है कि किसने कौन से वस्त्र पहन रखे हैं, इससे क्या फर्क पड़ता है कि कौन किस दुकान में ठहर गया है। इससे क्या फर्क पड़ता है ?

इससे सिर्फ एक ही फर्क पड़ता है कि एक पाखण्ड, हिपो-क्रेसी पैदा होती है, और कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए अगर हम जिन्दगी को सीधे-सीधे स्वीकार कर लें तो हमें पाखण्ड

और बेईमानियां न खोजनी पड़ें।

अभी एक संन्यासी मेरे पास मिलने आये। साथ में एक आदमी को लाये थे। मैंने उनसे कहा—कल सुबह आप आ जायें, अभी तो मेरे पास वक्त नहीं है, कुछ और लोगों को समय दिया है। आप कल सुबह आ जायें उन्होंने कहा—बड़ा मुश्किल होगा। क्योंकि मैं पैसे पास में नहीं रखता। तो ये भाई पैसा रखते हैं—वह साथ चलते हैं। वह भाई पैसा रखते हैं और इनकी सुविधा से मुझे आना-जाना पड़ता है क्योंकि टैक्सी का पैसा भी चुकाना पड़ता है और पैसा मैं रखता नहीं। तो अगर इनको सुबह समय हो तो मैं आ सकता हूं। तो मैंने उनसे कहा—पैसे का एक बन्धन था वह समझ में आता था, अब यह और डबल बन्धन है। यह आदमी और एक उपद्रव! इसको अगर समय नहीं है तो आप नहीं आ सकते? क्योंकि यह पैसा रखता है, पैसा रखेगा, देगा, लेगा।

अब यह सब पाखण्ड है। अगर टैक्सी में बैठना है तो पैसे देने हैं। तो अपने खीसे में रखें कि दूसरे के खीसे में रखें, इससे क्या फर्क पड़ता है। हां, एक फर्क पड़ता है क्योंकि रखने वाला यह सोच रहा है कि जो खीसे में रखा है वह नर्क जायेगा, हम स्वर्ग जायेंगे। अब बड़ा मजा है। पैसे तुम्हारे, खीसे में रखे हुए हैं वह और नर्क जायेगा? और आप धार्मिक संन्यासी हैं और आप उसको नर्क भिजवा रहे हो और वह बिचारा आपकी सेवा कर रहा है, आपकी टैक्सी के पैसे चुका रहा है।

ज़िन्दगी से भागने का परिणाम हुआ है पाखण्ड। सीधा नंगा पाखण्ड खड़ा हो गया है सब तरफ। क्योंकि हम जिन्दगी से भागेंगे कैसे? जिन्दगी चारों तरफ है, जहां भी हम जायेंगे वहीं है। जिन्दगी को जीना पड़ेगा। तो अगर कमायेंगे नहीं

तो भीख मांगनी पड़ेगी। भीख मांगने का मतलब हमारे लिए कोई और कमायेगा। और क्या मतलब होता है भीख मांगने का? लेकिन मजा यह है कि हम कमाने को पाप समझते हैं और दूसरा कमाता है, उससे लेने को पाप नहीं समझते। तो यह तो सिर्फ लीगल, कानूनी तरकीब हुई। इससे कुछ भला होने वाला है? यह सिर्फ कानूनी तरकीब हुई।

गांधीजी पढ़ने लन्दन गये तो उनके समाज के लोगों ने कहा, उनको हम जाने न देंगे, क्योंकि जाति के बाहर कर दिये जायेंगे। और उनके समाज के लोगों ने फैसला किया कि जो उनकी सहायता करेगा, पैसे देगा उसको भी हम जाति के बाहर कर देंगे। उनके चचेरे भाई सब पैसा लेकर बम्बई गांधी को पहुंचाने गये। उनके चचेरे भाई ने कहा—अगर मैं तुमको पैसा दूंगा तो मैं तो जाति के बाहर हो जाऊंगा तो मैं तो पैसा नहीं दे सकता। अब बड़ी मुश्किल हो गयी। वक्त आ गया जाने का, समय आ गया और वह भाई ही पैसा देने से इन्कार करता है। वह कहता है—मैं पैसा दूंगा तो मैं भी जाति से बन्द हो जाऊंगा। तब एक कानूनी तरकीब, लीगल तरकीब निकाली गयी। गांधीजी ने किसी और आदमी से जो जाति के बाहर है, उनकी जाति का नहीं, उससे रुपये ले लिए। उनके भाई ने उसके रुपये चुका दिये। उनके भाई ने गांधी जी को पैसे नहीं दिये इसलिए कि समाज उन पर मुकदमा नहीं चला सकता और उनके समाज के किसी आदमी ने गांधी जी की सहायता नहीं की। वह किसी बाहर के आदमी ने सहायता की, उसका आप कुछ बिगाड़ ही नहीं सकते क्योंकि वह समाज के बाहर ही है।

इसको मैं कहता हूं कानूनी तरकीबें। जो आदमी जिन्दगी से भागेंगे वे इस तरह की कानूनी तरकीबें खोज लेंगे। सभी संन्यासी कानूनी तरकीबों से जी रहे हैं। सारा संन्यास कानूनी

तरकीब से जी रहा है क्योंकि जिन्दगी छोड़कर जीना ही असम्भव है। तो फिर तरकीबें निकालनी पड़ेंगी कि हम कैसे जियें, उसका ढंग खोजना पड़ेगा।

जिन्दगी से कोई भाग नहीं सकता। और जिन्दगी से भागना उचित भी नहीं है इसलिए भागकर जाइएगा कहां ? आप भी तो जिन्दगी हैं। मैं भी तो जिन्दगी हूं। सबसे भाग जाऊंगा अपने से कहां भागूंगा।

मैंने सुना है, एक फकीर के पास कुछ युवक साधना के लिए आये थे कि हमें परमात्मा को खोजना है। फकीर ने कहा— तुम एक छोटा-सा काम करके लाओ। उसने उन चारों युवकों को एक-एक कबूतर दे दिया और कहा कि कहीं अन्धेरे में मार लाओ जहां कोई देखता न हो। एक गया बाहर, उसने चारों तरफ देखा, सड़क पर कोई नहीं था, दोपहर थी, लोग घरों में सोये थे, तो उसने जल्दी से गर्दन मरोड़ी। भीतर आकर उसने कहा कि यह रहा, सड़क पर कोई भी नहीं था। दूसरा युवक बड़ा परेशान हुआ, दिन था, दोपहरी थी। उसने कहा—मैं मारूं, तब तक कोई आ जाये, कोई खिड़की खोल-कर झांक ले; कोई दरवाजा खोल दे; कोई सड़क पर निकल आये तो गलती हो जायेगी। दूसरा रास्ता नहीं था निकलने का। रात जब अन्धेरा उतर आया तब वह गया और उसने गर्दन मरोड़ी और वापस लाकर गुरु को दे दिया और कहा— कोई भी नहीं था, अन्धेरा पूरा था। अगर होता भी तो भी दिखायी नहीं पड़ता। तीसरे युवक ने सोचा, रात तो है, अन्धेरी है, सब ठीक है, लेकिन रात में तारों का प्रकाश है, और कोई निकल आये, कोई दरवाजे से झांक ले, किसी को थोड़ा भी दिखायी पड़ जाये तो खतरा है। वह एक तलघरे में गया, द्वार बन्द कर लिया, ताला लगा लिया, गर्दन मरोड़ी, लाकर गुरु को दे दिया। उसने कहा, तलघरे में मारा, ताला

बन्द था, भीतर आने का उपाय न था, नजर की तो बात ही नहीं आनी थी।

चौथा युवक बहुत परेशान हुआ। पन्द्रह दिन बीत गये, महीना बीतने लगा। गुरु ने कहा, उसका घर कहां है ? क्या अभी तक जगह नहीं खोज पाया ? आदमी खोजने भेजे। वह लड़का करीब-करीब पागल हो गया था। वह गांव-गांव फिर रहा था, बिल्कुल पागल हो गया था। लोगों से पूछता था ऐसी कोई जगह बता दो जहां कोई न हो। लोगों ने उसे पकड़ा, उसे गुरु के पास लाये और कहा, तुम्हारे तीन साथी तो उसी दिन मार कर आ गये; रात होते-होते सब वापस लौट आये। उसने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं भी अन्धेरे तलघरे में गया था लेकिन जब मैं कबूतर की गर्दन मरोड़ने लगा तो मैंने देखा, कबूतर मुझे देख रहा है। तो मैंने कबूतर की आंखों पर पट्टी बांध दी और मैं तब एक और अन्धेरी गुफा में गया कि पट्टी में से ताकि किसी तरह दिखायी न पड़ जाये। लेकिन जब मैं गर्दन मरोड़ने को था तो मैंने देखा कि मैं तो देख ही रहा हूं। तब मैंने अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली और पट्टियों पर पट्टी बांध ली, ताकि आंख कहीं से झांककर देख न ले। क्योंकि आदमी की आंख का कोई भरोसा नहीं। कितनी पट्टियां बंधी हों पर थोड़ी-सी झांककर देख ही सकती हैं। और जहां मना ही होगा वहां तो झांककर देख ही सकती है। उसने कहा, मैंने काफी पट्टियां बांध ली सब तरह से पट्टियां बांध लीं, कबूतर की आंखों पर पट्टियां बांध दीं। बस गर्दन दबाने को था कि मुझे यह ख्याल आया कि अगर परमात्मा कहीं भी है तो उसे दिखायी तो पड़ ही रहा होगा। और उसी की खोज में मैं निकला हूं। तबसे मैं पागल हुआ जा रहा हूं, मुझे वह जगह नहीं मिल रही है जहां परमात्मा न हो। यह कबूतर

सम्हालिये आप । यह काम नहीं है होने का। उसके गुरु ने कहा—बाकी तीन फौरन विदा हो जाओ, तुम्हारी यहां कोई जरूरत नहीं है । इस चौथे आदमी की यात्रा हो सकती है । इसे जीवन के चारों तरफ छिपे हुए का थोड़ा-सा बोध हुआ । इसने गहरे से गहरे खोज करने की कोशिश की । इसे कुछ बोध हुआ है कि कोई मौजूद है जो जानता है ।

यह चारों तरफ जो मौजूदगी है, एक प्रजेंस है, उसका अनुभव, स्मरण—उसका स्मरण कैसे जगे ? जिसे हम भूल गये हैं और खोया नहीं, उसे हम फिर कैसे स्मरण करें ? इन चार दिनों में आपसे मैं बात ही नहीं करना चाहता; सच तो यह है कि बात में सिर्फ मजबूरी है, बात करने में मुझे रस नहीं है। बात सिर्फ इसलिए करता हूं कि कुछ और करने को भी आपको राजी कर लूं। हो सकता है, बात से आप राजी हो जायें, कुछ और किया जा सके, जिसका बात से कोई सम्बन्ध नहीं है। तो सांझ बात करूंगा और जिनको लगे कि हां, कहीं और यात्रा करनी है उनके लिए सुबह, बात नहीं, सुबह ध्यान का प्रयोग करेंगे और उस द्वार में प्रवेश की कोशिश करेंगे जहां से उस प्रभु का पता चलता है जो कि जीवन है। उसका पता चल सकता है। कठिन नहीं, क्योंकि वह बहुत निकट है। कठिन नहीं, क्योंकि वह दूर नहीं । और कठिन नहीं, क्योंकि हमने उसे कहीं खोया नहीं है। और कठिन नहीं, क्योंकि हम चाहे उसे कितना ही भूल गये हों, वह हमें किसी भी हालत में हों कभी भी नहीं भूल पाया है ।

बच्चे बड़े हो जाते हैं और मां को भूल जाते हैं—स्वाभाविक है भूल जाना। जिन्दगी भर बच्चे मां को याद रखें या जिन्दगी में निकलें, या कुछ और खोजें। बच्चे मां को भूल जाते हैं । स्वाभाविक है, क्योंकि बच्चे भागेंगे जिन्दगी की तरफ, मां को भूल जायेंगे । लेकिन मां, बच्चे कितना ही भूल

जायें लेकिन मां नहीं भूल पाती ।

मैं एक छोटे से स्टेशन पर रुका हुआ था । गाड़ी चूक गया था और एक स्टेशन पर बैठा हुआ था । पास के गांव से एक बूढ़ी औरत को कुछ लोग लाये स्ट्रेचर पर, उसके सिर में पट्टियां बंधी थी, सिर पर किसी ने चोट की थी कुल्हाड़ी से। कुछ औरतें रो रही थीं, वह औरत अभी जिन्दा थी, उसके रिश्तेदार साथी सब थे । मैंने उनसे पूछा कि क्या हुआ ? तो वह औरत जो स्ट्रेचर के ऊपर पड़ी थी, आधी बेहोश थी, कुछ कभी होश आता था, कभी बेहोश थी । उसे किसी बड़े नगर में ले जाते थे वे गाड़ी में बिठाकर, किसी बड़े अस्पताल में । पास की दूसरी औरत ने मुझसे कहा कि मत पूछिये, एक ही बेटा है इसका, ऐसे बेटे तो पैदा होने से मर जायें तो अच्छा । क्योंकि उस बेटे ने कई कुल्हाड़ियां मार दी हैं । लेकिन वह औरत एकदम से चौंक गयी जैसे ही उस पास की औरत ने कहा—वह मरती हुई औरत—जो शायद जिन्दा नहीं रहेगी, घड़ी-दो-घड़ी बाद मर जायेगी । उसका बहुत खून बह गया है और गाड़ी देर से है और पता नहीं अस्पताल तक पहुंचेगी कि नहीं पहुंचेगी । वह मरती हुई बूढ़ी औरत एकदम चौंक गयी, उसकी आंख खुल गयी, उसने कहा—ऐसा मत कहो । आज मेरा बेटा है, उसने मारा है । अगर न होता तो मारने के लिए भी तरस जाती कि कोई मारे । मेरा बेटा है तो उसने मारा । लेकिन यह मत कहो कि ऐसा बेटा पैदा होते से ही मर जाता तो अच्छा । अगर मेरा बेटा न होता तो कोई मारे, इसके लिए भी तरस जाती कि मारे । उसके बेटे ने कुल्हाड़ी मार दी है, मारने में कोई कमी न थी, लेकिन वह नहीं भूल पाती, वह नहीं भूल पाती ।

ईश्वर—मैं कह रहा हूं उस चेतना के सागर को—जहां से हम आते हैं और जहां हम चले जाते हैं । जब मां नहीं भूल

पाती, जिससे हमारा केवल शरीर आता है; सिर्फ शरीर आता है। ध्यान रहे, ज्यादा बहुत कुछ नहीं आता मां से। शरीर भी बड़ी छोटी व्यवस्था में आता है। वह मां नहीं भूल पाती, क्योंकि उससे शरीर आया हमारा। लेकिन जिससे हमारा सब कुछ आया है, सब व्यक्तित्व, उसके भूलने का सवाल नहीं है। लेकिन ध्यान रहे, इसका यह मतलब नहीं है कि वह बैठकर आपकी याद कर रहा है। क्योंकि याद हम तभी करते हैं जब हम भूल भी जाते हैं। जिसे हम भूलते नहीं, उसकी याद का सवाल ही नहीं। आप याद में हैं ही। और जिस दिन कोई व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुंचता है उस दिन हैरान हो जाता है कि कितनी उसने याद की थी, कितनी प्रतीक्षा की थी। वह तो द्वार पर ही बैठा था। कितनी बार उसने द्वार खटखटाये; कितनी बार उसने पुकारा कि खोलो, खोलो; लेकिन हम व्यस्त थे अपने कामों में। यह भी हो सकता है कि हम पूजा में व्यस्त रहे हों; कि हम अपनी घण्टी हिला रहे हों, कि अपने भगवान के सामने आरती चला रहे हों और हमने सोचा हो, यह कौन बाधा दे रहा है दरवाजे पर? हवाएं दरवाजे पर धक्का दे रही हैं और हवाएं उसके हाथ हैं और हम अपने बनाये भगवान के सामने पूजा कर रहे हैं। वह जो द्वार पर दस्तक दे रहा है जीवन की, थकता नहीं है, दिये जाता है दस्तक, उसे हम कैसे याद कर सकते हैं।

सुबह ध्यान में हम उसकी स्मृति में ही प्रवेश करने का प्रयोग करने को हैं। सुबह जो लोग आयें, वे वे ही लोग आयें जो सुनने में नहीं, जाने में, होने में, पहुंचने में, कुछ करने में उत्सुक हैं। एक घण्टा सुबह हम गहरे से गहरे ध्यान का प्रयोग करने को आयेंगे। रोज सांझ उस सम्बन्ध में कुछ कहूंगा। उस कहने का केवल एक ही मतलब है कि सुबह आप आ सकें। जो भी आपके प्रश्न होंगे वे लिख कर दे देंगे, उसकी

मैं रोज सांझ की चर्चाओं में बात कर लूंगा। लेकिन ध्यान रहे, जो मैं कह रहा हूं, उस सम्बन्ध में ही प्रश्न पूछेंगे तो अच्छा है। और सुबह जो लोग ध्यान करेंगे, ध्यान के सम्बन्ध में जो पूछना हो, वह भी लिखकर दे देंगे, उसको भी रात हम बात कर लेंगे।

इधर मेरा इरादा बात करने का नहीं है। कभी भी नहीं था। बात सिर्फ मजबूरी है। कोई उपाय नहीं कि आपको वहां ले जाया जाये जहां बहुत फूल खिले हैं। कोई उपाय नहीं है कि आपको वहां ले जाया जाये जहां उसका मंदिर है। शायद आप सुन लें पुकार और उस तरफ चल दें।

तो कल सुबह साढ़े आठ बजे जो उसके मंदिर में प्रवेश करना चाहते हैं, सुबह आ जायें। आने के लिए दो तीन बातें ख्याल में रखें—बिना स्नान किये कोई भी न आये, कपड़े ताजे पहन कर आयें और घर से ही चुप चलें। रास्ते पर बातचीत करते मत आयें और यहां तो आकर बिलकुल ही चुप बैठें, यहां कोई बातचीत नहीं करेगा। जो भी आये, चुपचाप बैठता चला जाये। चुपचाप पहले से ही आंख बन्द करके बैठ जायें। कुछ भी न करें। मैं जब आऊंगा ठीक साढ़े आठ बजे, और ठीक साढ़े आठ के पहले ही आ जायें, बाद में कोई न आये। क्योंकि जब प्रयोग शुरू हो जायेगा तो फिर आपकी समझ में आना मुश्किल हो जायेगा कि क्या हो रहा है। ठीक साढ़े आठ के पहले आ जायें स्नान करके, और घर से चुप चलें। आंख भी नीची रखे हुए आयें आंख से भी बहुत देखें मत चारों तरफ। आंख नीची करके आयें, बात बन्द करके, चुपचाप मौन से यहां आकर बैठ जायें। ठीक साढ़े आठ बजे सुबह प्रयोग हो जायेगा और साढ़े नौ बजे चले जायेंगे।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए

बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

साधना-शिविर, जूनागढ़, दिनांक ६ दिसम्बर १९६७, रात्रि

२. बहने दो जीवन को

ध्यान के सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें समझ लेनी जरूरी हैं। क्योंकि बहुत गहरे में तो समझ का ही नाम ध्यान है।

ध्यान का अर्थ है—समर्पण। ध्यान का अर्थ है—अपने को पूरी तरह छोड़ देना परमात्मा के हाथों में। ध्यान कोई क्रिया नहीं है, जो आपको करनी है। ध्यान का अर्थ है—कुछ भी नहीं करना है और छोड़ देना है उसके हाथों में, जो कि सचमुच ही हमें सम्हाले हुए हैं।

जैसा मैंने कल रात कहा, परमात्मा का अर्थ है—मूल स्रोत, जिससे हम आते हैं और जिसमें हम लौट जाते हैं। लेकिन न तो आना हमारे हाथ में है और न लौटना हमारे हाथ में है। हमें पता नहीं चलता, कब हम आते हैं और कब लौट जाते हैं। ध्यान, जानते हुए लौटने का नाम है। जब आदमी मरता है तो बिना चाहे बिना जाने लौट जाता है। ध्यान जानते हुए अपने को उस मूल स्रोत में खो देना है। ताकि हम जान सकें कि वह क्या है और यह भी जान सकें कि हम क्या हैं। तो ध्यान के लिए पहली बात तो स्मरण रखना—समर्पण, 'सरेन्डर, टोटल सरेन्डर'। सच तो यह है कि अधूरा समर्पण हो ही नहीं सकता है। ऐसा नहीं हो सकता कि आधा तो हम परमात्मा के हाथों में छोड़ दें और आधा अपने हाथों में रखें। छोड़ेंगे तो पूरा छोड़ेंगे, नहीं छोड़ेंगे तो बिल्कुल नहीं छोड़ पायेंगे। अंग्रेजी में एक शब्द है, 'लेट गो, सब कुछ छोड़ देना।

अगर एक क्षण को भी हम सब छोड़ पायें तो सब हमें मिल जाये, इसकी पात्रता उपलब्ध हो जाती है। पूरी तरह अपने को छोड़ देने का नाम ध्यान है। जिसने अपने को थोड़ा भी पकड़ा वह ध्यान में नहीं जा सकेगा; क्योंकि अपने को पकड़ना यानी रुक जाना अपने तक और छोड़ देना यानी पहुंच जाना उस तक, जहां छोड़ कर हम पहुंच ही जाते हैं।

इस समर्पण की बात समझने के लिए हम तीन छोटे-छोटे प्रयोग करेंगे, ताकि यह समर्पण की बात पूरी समझ में आ जाये। समर्पण को भी समझने के लिए सिर्फ समझ लेना जरूरी नहीं है, करना जरूरी है, ताकि हमें ख्याल में आ सके कि क्या अर्थ हुआ समर्पण का।

ध्यान विलीन होने की क्रिया है—अपने को खोने की, उसमें जो हमारा मूल स्रोत है। जैसे कोई बीज टूट जाता है और वृक्ष हो जाता है, ऐसे ही जब कोई मनुष्य टूटने की हिम्मत जुटा लेता है, तो परमात्मा हो जाता है। मनुष्य बीज है, परमात्मा वृक्ष है। हम टूटें तो ही वह हो सकता है। जैसे कोई नदी सागर में खो जाती है लेकिन नदी सागर में खोने से इन्कार कर दे, तो फिर नदी ही रह जाती है और सागर में खोने से इन्कार कर दे, तो नदी भी नहीं रह जाती, तालाब हो जाती है; बंधा हुआ डबरा हो जाती है। क्योंकि जो सागर में खोने से इन्कार करेगा, उसे बहने से भी इन्कार करना होगा। क्योंकि सब बहा हुआ अंततः सागर में पहुंच जाता है, सिर्फ रुका हुआ नहीं पहुंचता है। डबरे सिर्फ सूखते हैं और सड़ते हैं। सागर का महाजीवन उन्हें नहीं मिल पाता।

हम सब भी डबरों की तरह हो जाते हैं; क्योंकि हम सबकी वे जीवन-सरितायें परमात्मा के सागर की तरफ नहीं बहती है। और वह केवल वही सकता है, जो अपने से विराट में लीन होने को तैयार है। जो डरेगा लीन होने से, वह रुक

जायेगा, ठहर जायेगा, जम जायेगा, बहना बन्द हो जायेगा।

जिन्दगी बहाव है रोज और महान से महान की तरफ जिन्दगी यात्रा है और और विराट की मंजिल की तरफ।

लेकिन हम सब रास्तों पर रुक गये हैं, मील के पत्थरों पर। ध्यान इन बहावों को वापिस पैदा कर लेने की आकांक्षा है। यह बड़ा उल्टा है वर्षा होती है पहाड़ों पर, तो बड़े-बड़े शिखर खाली रह जाते हैं; क्योंकि वे पहले से ही भरे हुए हैं और खड्ड और खाइयां भर जाती हैं, झीलें भर जाती हैं; क्योंकि वे खाली हैं। जो भरा है वह खाली रह जायेगा, जो खाली है वह भर जायेगा। परमात्मा की वर्षा तो प्रतिपल हो रही है। सब तरफ वही बरस रहा है। लेकिन हम अपने भीतर भरे हुए हैं, तो खाली रह जाते हैं। काश ! हम भीतर गड्ढों की तरह खाली हो जायें, तो परमात्मा हम में भर सकता है। हम तब उसके भराव को उपलब्ध हो सकते हैं, 'फुलफिलमेन्ट' को उपलब्ध हो सकते हैं। यह बहुत उल्टा है, लेकिन यही सही है। जो भरे हैं, वे खाली रह जायेंगे और जो खाली हैं, वे भर जाते हैं। इसलिए ध्यान का दूसरा अर्थ है—खाली हो जाना, 'एम्प्टी' हो जाना, बिल्कुल खाली हो जाना है, कुछ भी नहीं बचाना है। मिटने का, समर्पण का, खाली होने का सबका एक ही अर्थ है।

ध्यान की आधार-शिला अक्रिया है, क्रिया नहीं है। लेकिन शब्द ध्यान से लगता है कि कोई क्रिया करनी होगी। जबकि जब तक हम कुछ करते हैं, तब तक ध्यान में न हो सकेंगे। जब हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं तब जो होता है, वही ध्यान है। ध्यान हमारा न करना है। लेकिन मनुष्य-जाति को एक बड़ा गहरा भ्रम है कि हम कुछ करेंगे तो ही होगा। हम कुछ न करेंगे तो कुछ न होगा।

बीज को कुछ करना नहीं पड़ता टूटने के लिए, अंकुर

बनने के लिए और बीज को कुछ करना नहीं पड़ता, फूल बन जाने के लिए; होता है। हम भी बच्चे से जवान हो जाते हैं, कुछ करना नहीं पड़ता है। जन्म होता है, जीवन होता है, मृत्यु होती है, हमारे करने से नहीं; होता है। जीवन में बहुत कुछ है, जो हो रहा है अपने से। और अगर हम कुछ करेंगे तो बाधा पड़ेगी होने में—गति नहीं आयेगी। खाना आपने खा लिया है, फिर वो पचता है, पचाना नहीं पड़ता आपको। और अगर आपको ख्याल भी आ जाये कि मुझे पचाना है खाना, तो आप बड़ी कठिनाई में पड़ जायेंगे और पाचन में बाधा पड़ जायेगी, न हो तो कभी प्रयोग करके देखें। खाना खाने के बाद ख्याल रखें कि भोजन पेट में पच रहा है। आप पायेंगे चौबीस घंटे बाद कि भोजन नहीं पच पाया। जो रोज पचता था, उसमें बाधा पड़ गयी। कभी कोशिश करके सोकर देखें, प्रयास करें सोने का तो फिर पायेंगे कि नींद आनी मुश्किल हो गई। नींद आती है, लानी नहीं पड़ती है।

यह समझ लेना जरूरी है कि जीवन में बहुत कुछ है, जो अपने से होता है, हमें नहीं करना होता। और यदि हम करते हैं तो उल्टे बाधा ही पड़ती है—सहयोग नहीं मिलता है।

ध्यान भी उन्हीं दिशाओं में से एक है, जहां हम जा सकते हैं, लेकिन अपने को ले जा नहीं सकते—जहां हमारा विकास हो सकता है, लेकिन हम अपने को धक्का देकर विकास नहीं करवा सकते।

यह बात बहुत स्पष्ट रूप से मन के सामने प्रगट हो जानी चाहिए कि ध्यान हमारी कोई क्रिया नहीं है, ध्यान हमारा समर्पण है। लेकिन हमारी भाषा में बड़ी भूल हो जाती है, समर्पण भी एक क्रिया है। असल में जिन्दगी और भाषा में कुछ बुनियादी भेद हैं, और धीरे-धीरे हम भाषा के इतने आदी हो जाते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि जिन्दगी कुछ

बात और है। हिन्दुस्तान का नक्शा हिन्दुस्तान नहीं है और न घोड़ा शब्द घोड़ा है। घोड़ा शब्द तो लिखा है शब्द-कोष में और घोड़ा बंधा है अस्तबल में। वह दोनों में बड़ा भेद है, शब्द प्रत्येक चीज को जो शक्ल दे देते हैं, हम अगर जिन्दगी में भी जो उसको खोजने गये तो बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे।

अब जैसे प्रेम करना एक क्रिया है शब्दों की दुनिया में; लेकिन जीवन में प्रेम किया ही नहीं जा सकता, होता है। वहां वह क्रिया नहीं है; वहां वह घटना है—हैपनिंग है। वहां कोई मनुष्य प्रेम में पड़ जाता है, कर नहीं सकता प्रेम। और अगर आपसे कहा जाये कि फलां व्यक्ति को प्रेम करो, तो ज्यादा से ज्यादा आप प्रेम का अभिनय कर सकते हैं; प्रेम नहीं कर सकते हैं। अगर चेष्टा की प्रेम करने की, तो आप खुद ही भीतर पायेंगे कि भीतर तो प्रेम नहीं है। चेष्टा से प्रेम असम्भव है, मां बेटे को प्रेम नहीं करती; मां का बेटे से प्रेम होता है, और प्रेमी भी प्रेयसी को प्रेम नहीं करता है; प्रेम होता है। लेकिन भाषा में प्रेम किया है और जीवन में प्रेम एक घटना है। ऐसे ही ध्यान किताब में पढ़ेंगे तो लगेगा करना पड़ेगा। और अगर ध्यान को समझने जायेंगे तो पता चलेगा करना नहीं है करना हो तो आसान भी मालूम पड़ता है, न करना बहुत कठिन मालूम पड़ता है।

तो फिर क्या किया जाये? मैंने यह मुट्ठी बांध ली, तो मुट्ठी बांधना एक क्रिया है। बांधने के लिए मुझे कुछ करना पड़ रहा है। फिर मैं किसी के पास जाऊं और पूछूं कि मुझे मुट्ठी खोलनी है, अब मैं क्या करूं? बांधना एक क्रिया है भाषा में, खोलना भी एक क्रिया है भाषा में; लेकिन जिन्दगी के तथ्यों में बांधना तो क्रिया है, खोलना क्रिया नहीं है, खोलने के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ेगा। सिर्फ मैं बांधूंगा तो

मुट्ठी खुल जायेगी—मुट्ठी का खुलना अपने से ही जायेगा। बांधना पड़ता है हमें, खुलना अपने से हो जाता है। अशांत होना क्रिया है, शांत होना क्रिया नहीं है। अशांत होने के लिए हमें बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, बड़ा श्रम करना पड़ता है। और अशांति में सफल होने के लिए बड़ी कुशलता चाहिए; लेकिन शांत होना क्रिया नहीं है। अगर हम अशांत होना बन्द कर दें, तो बस शांत होना हो जायेगा। इसको ऐसा भी समझ सकते हैं कि अशांति और शांति में विरोध नहीं है। अशांति का अभाव—'एबसेन्स'—शांति है। हमारी जो पकड़ है करने की, उसे पहले समझ कर छोड़ देना चाहिए।

ध्यान हम करेंगे नहीं, ध्यान में हम होंगे। ध्यान में हम जायेंगे, ध्यान में हम बहेंगे, तैरेंगे नहीं। तैरना क्रिया है, बहना क्रिया नहीं है, बहना एक घटना है। उसमें हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता है। और इसलिए मजे की बात है, जिन्दा आदमी नदी में डूब जाये, मरे हुए आदमी को कभी डूबते हुए नहीं देखा गया; बल्कि जिन्दा आदमी भी डूब जाये तो मरते ही ऊपर आ जाता है वापिस। नदी भी बड़ी गजब का काम करती है! जिन्दा को डुबा देती है, मुर्दे को उठा देती है! जिन्दा को मार डालती है और मुर्दे को ऊपर तैरा देती है। आखिर मुर्दे में ऐसी कौन-सी कला है कि वह ऊपर आ जाता है और जिन्दा नीचे चला जाता है? मुर्दे के पास एक कला है जो जिन्दा के पास नहीं है। मुर्दा तैर नहीं सकता, वह तैरने में असमर्थ है। तैरने का उपाय ही नहीं है, मुर्दा सिर्फ बह सकता है। जो तैरता नहीं, वह नदी के ऊपर आ जाता है और जो तैरता है, वह नीचे चला जाता है। बात क्या है? तैरने में शक्ति का व्यय होता है—तैरने में नदी से लड़ना पड़ता है। नदी बहुत बड़ी है। और जीवन की नदी तो बहुत बड़ी है. उससे अगर हम लड़ेंगे तो डूबेंगे ही, मरेंगे

ही; क्योंकि लड़ने में शक्ति नष्ट होगी। मुर्दा लड़ता ही नहीं, वह नदी के साथ एक हो जाता है। वह कहता है नदी से, जहां ले चलो वहीं चलने को राजी हैं, डुबाओ तो डूबने को राजी हैं, उठाओ तो उठने को राजी हैं। किनारे फेंक दो, तो जिस किनारे फेंक दो वही हमारी मंजिल है। कहीं हमें जाना नहीं है और ले चलो साथ तो साथ चलने को राजी हैं। मुर्दा कहता है कि हम अलग नहीं; तुम्हारे साथ हैं। फिर नदी मुश्किल में पड़ जाती है। मुर्दे को नदी हरा नहीं पाती है। मुर्दा नदी से ज्यादा ताकतवर सिद्ध होता है। मुर्दा मरा हुआ है और जिन्दा आदमी लड़ता है, इसलिए कमजोर हो जाता है। रिजिस्ट करता है, विरोध करता है, इसलिए टूट जाता है।

ध्यान—मुर्दे आदमी की भांति हो जाने का नाम है। हम कुछ भी नहीं करते हैं, हम जीवन के प्रवाह में छोड़ देते हैं अपने को। जो हो, हो। इस स्थिति को समझने के लिए पहले हम तीन छोटे प्रयोग करेंगे। इस ध्यान की, मिटने की, स्थिति को समझने के लिए, वे तीन प्रयोग ध्यान की सीढ़ियां हैं। और अगर वे तीन हमें ठीक से समझ में आ जायें तो ध्यान बहुत आसान है। लेकिन अगर वे तीन हमारी समझ में न आयें तो फिर ध्यान बहुत मुश्किल हो जायेगा।

कल एक मित्र ने आकर कहा कि सूखा पत्ता सोच ही नहीं पाता कि वह नदी में बह रहा है, तो हम सोच ही नहीं पाते अपने को सूखे पत्ते की तरह। तो मैंने कहा—अच्छा है, मुर्दे की तरह सोचें। एक मुर्दा लाश बह रही है। और सूखे पत्ते में और मुर्दे में फर्क नहीं है, सूखा पत्ता हरे पत्ते की लाश है और मुर्दा हमारी लाश है। इसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। हरा पत्ता जिन्दा है और सूखा पत्ता मर गया है। वह भी लाश है हरे पत्ते की। हरा पत्ता लड़ता है हवाओं से। हवायें

पूरब जाती हैं, तो हरा पत्ता कहता है, नहीं जायेंगे । हवायें पश्चिम जाती हैं, तो हरा पत्ता कहता है, अपनी ज़गह रहेंगे। इसलिए तो हरे पत्ते से गुजरती हवा में शोरगुल हो जाता है; क्योंकि पत्ते लड़ाई करते हैं। सूखा पत्ता कहता है—जहां ले चलो, जो मरजी, वहीं राजी हैं। सूखा पत्ता—पूरब ले जाती हवा, पूरब चला जाता; पश्चिम ले जाती तो पश्चिम चला जाता है। सूखा पत्ता विरोध नहीं करता है।

ध्यान अविरोध है, 'नॉन रेजिसटेंस' है। जब मैं कहूं, बहना, तो आपको भीतर प्रतीति हो जानी चाहिए कि बहने का क्या मतलब है। एक दफे प्रतीति हो जाये फिर तो शब्द भी काम करता है। जैसे मैं आपसे कहूं कि नींबू और आप थोड़ी देर नींबू को सोचें तो आप पायेंगे, मुंह में पानी आना शुरू हो गया। अभी नींबू तो नहीं है, लेकिन नींबू का शब्द भी मुंह में पानी ला सकता है। क्यों ? नींबू का अनुभव है, वह पानी लाया है मुंह में। और नींबू शब्द में भी वह अनुभव समा गया है। शब्द भी सार्थक हो सकते हैं, अगर अनुभव से जुड़ जायें।

तो इसलिए हम पहला प्रयोग करेंगे बहने का। पांच मिनट तक प्रयोग करके अनुभव करें कि बहने का मतलब क्या है। और जब हमें भीतर से समझ में आ जाये कि यह रहा बहने का मतलब, यह मुर्दे की तरह होकर बह गये। तो फिर जब मैं कहूंगा, बहें, तो आप समझ पायेंगे कि मैं क्या कह रहा हूं।

फिर दूसरा, फिर तीसरा, ऐसे पांच-पांच मिनट के तीन प्रयोग समर्पण की पूर्ण भावना को ख्याल में ले आने के लिए; फिर चौथा प्रयोग ध्यान का करेंगे। क्योंकि इन तीन को समझ कर ही ध्यान किया जा सकता है।

एक तो थोड़े फासले पर बैठें। कोई किसी का स्पर्श न

करता हो। ध्यान में कोई गिर भी सकता है। इसलिए इतनी दूरी पर बैठें कि कोई गिर जाये तो उससे कोई किसी के ऊपर न पड़ जाये। और इतनी जगह यहां है कि फैलकर बैठ जायें, पास बैठने की कोई जरूरत नहीं है। थोड़े फासले पर ही हो जायें, ताकि अपने को पूरी तरह छोड़ सकें; अन्यथा यही ख्याल बना रहेगा कि अपने को सम्भाले रखें। अपने को सम्भाले रखना बाधा हो जायेगी। उसमें कंजूसी न करें। इतना दूर फासला पड़ा है, सब हट जायें। आवाज दूर तक सुनाई पड़ेगी, घने मत बैठें। शीघ्र हट जायें। इसमें प्रतीक्षा मत करें; क्योंकि छोटी-सी बात से बहुत कुछ खोया जा सकता है। ना, ना, वहां ऐसे हिलने से कुछ भी नहीं होगा। वहां हिलने से क्या फर्क पड़ेगा ? कोई आपके हिलने से जगह थोड़ी ही बन जायेगी ? वहां से हट जायें। इतनी चारों तरफ जगह पड़ी है, यह मौका है उसका उपयोग करें पूरा। ऐसे बैठें कि आप बिल्कुल बेफिक्र होकर बैठ सकें कि गिर गये, कोई बात नहीं। और बातचीत नहीं, आवाज नहीं, चुपचाप। हां, किसी को लेटना हो, लेट जाये। लेटने में और भी सुविधा हो जायेगी। और जगह तो काफी है, लेट सकते हैं। किसी को लेटना हो, पहले से ही लेट जायें; क्योंकि तब और आसानी से बह सकेंगे। बैठने में भी थोड़ा तनाव तो रहता ही है कि हम बैठे हैं। बैठना एक क्रिया है और लेटना एक क्रिया नहीं है।

अब पहली बात, पहला प्रयोग—पहला प्रयोग है, बहने का प्रयोग। नदी में कोई आदमी तैरता है, हम में से भी बहुत लोग तैरे होंगे; अन्यथा लोगों को तैरते देखा होगा। जब कोई तैरता है तो कुछ करता है। लेकिन तैरने से बिल्कुल उल्टी दशा है बह जाना, 'फ्लोटिंग'। एक आदमी बहता है, तैरता नहीं। अपने हाथ-पैर रोक लेता है और बहा चला

जाता है। फिर नदी जहां ले जाये, वहीं चला जाता है। फिर उसकी अपनी जाने की कोई इच्छा न रही। तैरने वाले की इच्छा है। तैरने वाला कहीं पहुंचना चाहता है। तैरने वाला नदी से लड़ेगा। तैरने वाले को उस किनारे पहुंचना है। नदी अगर बाधा देगी तो दुश्मन मालूम पड़ेगी। और नदी बाधा देगी; क्योंकि नदी अपने रास्ते भागी जा रही है। तैरने वाले का अपना रास्ता होगा तो भेद पड़ने ही वाला है। बहने का मतलब है, नदी के साथ एक हो जाना है। बहने के साथ नदी का कोई विरोध नहीं है। नदी जहां ले जाये वहीं हमारी मंजिल है। तब फिर नदी से कोई दुश्मनी नहीं रह जाती है।

समर्पण का पहला अर्थ है, इस जीवन के साथ हम बह सकें, तैरें ना। ध्यान की पहली सीढ़ी है—बहने का अनुभव।

तो जैसा मैं कहूं वैसा थोड़ा प्रयोग करें, ताकि भीतर उस-की 'फिलिंग', उसका अनुभव हो सके। आंखें बन्द कर लें। बन्द करने का मतलब भी कि आंखें बन्द हो जाने दें, उन पर भी जोर न डालें। पलकों को ढीला छोड़ दें, ताकि आंखें बन्द हो जायें। पलक झपक जाये और बन्द हो जाये। आंखों को बन्द हो जाने दें। शरीर को ढीला छोड़ दें, कोई अकड़, कोई कड़ापन शरीर में न रखें। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें; क्योंकि हम कोई काम करने नहीं जा रहे हैं। हम बहने जा रहे हैं, तो हम अपने को बिल्कुल 'रिलेक्स' और ढीला छोड़ दें। आंख बन्द हो गई, शरीर ढीला छोड़ दिया। देखिए बीच में आकर न बैठें। अब आप लोग पीछे चले जायें और जो भी पीछे आयें, पीछे बैठें, वहां बीच में न बैठें, पीछे...।

अब एक छोटा-सा चित्र देखें, ताकि हम अनुभव कर सकें। देखें,...पहाड़ों के बीच में, सूरज की रोशनी में चमकते हुए पहाड़ों के बीच में एक नदी भागी चली जा रही है। आंखों

के पर्दे पर ठीक से देखें, सूरज की रोशनी में पहाड़ चमक रहे हैं और नदी तेज गति से भागी चली जा रही है। नदी की लहरें चमक रही हैं। नदी जोर से शोर-गुल करती भागी चली जा रही है। नदी को बहुत ठीक से देखें। पहाड़ों के बीच भागती हुई नदी सागर की तरफ। उन दो पहाड़ों के बीच में बहती हुई एक नदी, तेज धार, बड़ी गति, गहरा नीला पानी, नदी भागी जा रही है सागर की खोज में। दूर कहीं अज्ञात में सागर है, नदी भागी जा रही है खोजने को। दूर की यात्रा पूरी करनी है, पहाड़ों के बीच में कलकल बही जाती नदी की लहरें तेज हैं गहरी हैं बहुत, नीला है रंग, गति है जोर की। जब ठीक से देखेंगे तो बराबर दिखाई पड़ने लगेगा कि नदी भागी जा रही है। इसके भागने को भी ठीक से देख लें। इसकी गहराई को भी ठीक से समझ लें; क्योंकि थोड़ी ही देर में इसके साथ हम भी बह रहे होंगे। इसकी गहराई में हम भी उतर जायेंगे। नदी का गहरापन, नदी का नीलापन, चमकता है धूप में। उसे देखते-देखते ही मन पर हल्की शान्ति छा जायेगी।

अब इस नदी में हमें भी उतर जाना है। उतर जायें मन के चित्र पर। मन की कल्पना पर देखें कि हम भी इस नदी में उतर गये। अब इस नदी में अपने को भी डाल दें, एक मुर्दे की भांति। फिर डूबने का उपाय ही न रहेगा। अपनी लाश को बहता हुआ देखें इस नदी में। अब लाश तैर नहीं सकती इसलिए तैरने की कोशिश मत करना। तैरने का सवाल ही नहीं है, हाथ-पैर छोड़कर पड़ गये हैं। मुर्दे की तरह बहे जा रहे हैं। और तैरना नहीं है, बहना है। जैसे एक सूखा पत्ता नदी में बहने लगे, वैसे बहने लगें। और सूखा पत्ता तैरेगा कैसे? उसके पास हाथ-पैर नहीं हैं। सूखे पत्ते की भांति हो जायें और नदी में बहना शुरू कर दें। लहरें बहाने लगेंगी।

सागर की तरफ नदी भाग रही है, आप भी उसके साथ बहने लगें। नदी के साथ एक हो जायें। तैरेंगे तो हमें कुछ करना पड़ेगा। वह समर्पण न होगा, और बहेंगे तो नदी कुछ करेगी, वह समर्पण होगा।

ध्यान में परमात्मा की नदी में हम अपने को छोड़ दें और बह जायें। हम कुछ भी न करें, उसके हाथों में छोड़ दें, जो उसे करना हो करे, न करना हो, न करे। जैसे कोई सूखा पत्ता बहती नदी में गिर गया हो, ऐसे ही नदी में गिर जायें और बह जायें। कोई प्रयास नहीं। नदी के लिए आप बोझ नहीं हैं; क्योंकि नदी को कोई मेहनत नहीं पड़ रही है, बस बही चली जा रही है।

ध्यान का पहला चरण है, 'फ्लोटिंग' का, बहने का अनुभव। एक पांच मिनट तक नदी में बहने का अनुभव करें, ताकि भीतर मन के कोने-कोने तक बहने की प्रतीति प्रगट हो जाये। बहें मुर्दे की भांति, कोई प्राण नहीं, हाथ-पैर हिलाने का कोई उपाय नहीं। चाहें तो भी नहीं हिला सकते। और बही जा रही है लाश तेजी से नदी के साथ। तैर नहीं रही है, कहीं जाना नहीं, कहीं पहुंचना नहीं है लाश को, सिर्फ नदी के साथ बहना है। सिर्फ बहने का ध्यान रहे; तैरना नहीं है। हाथ-पैर मत चलाना, छोड़ देना अपने को। नदी डुबाये तो डूब जाना, उबारे तो उबर आना। जहां ले जाये वहां चले जाना। हमारी कोई मन्जिल नहीं है, हम बहने को तैयार हैं। अब मैं पांच मिनट के लिए चुप हो जाता हूं। आप नदी में बहें, ताकि बहने का ठीक-ठीक अनुभव ख्याल में आ जाये, कि बहने का अर्थ क्या है ?

ध्यान की यह पहली सीढ़ी बनेगी। इसे ठीक से पहचान लेना जरूरी है। दो पहाड़ चमकते हुए सूरज की रोशनी में, नदी भागती है बीच से, उसमें हम भी बहे चले जा रहे हैं।

और बहते ही बहते इतनी शांति मालूम होने लगेगी, इतनी ताजगी घेर लेगी, इतना आनन्द भीतर प्रकट होने लगेगा; सब चिंतायें गिर जायेंगी सब भार गिर जायेगा; क्योंकि सभी चिंतायें तैरने की चिंतायें हैं, बहने वाले को कोई चिंता की जरूरत नहीं। सब तनाव गिर जायेगा; क्योंकि सब तनाव तैरने वाले के तनाव हैं। बहने वाले को कोई तनाव की जरूरत नहीं।

अब मैं चुप होता हूं। आप छोड़ दें अपने को, बिलकुल ढीला छोड़ दें और बह जायें...छोड़ दें...बह जायें...बिल्कुल बह जायें...नदी में छोड़ दें और बह जायें। नदी भागी चली जाती है और आप बहे चले जाते हैं। छोड़ दें...बह जायें, बिल्कुल छोड़ दें...नदी बहा ले जाये, बिल्कुल बह जायें, नदी के साथ एक हो जायें। बहने का ठीक से अनुभव करें, मन एकदम शांत होने लगेगा। एकदम शीतलता और ताजगी भीतर प्रवेश कर जायेगी। बहें...(पक्षियों का मधुर कलरव) छोड़ दें शरीर को, छोड़ दें, बिल्कुल ऐसा छोड़ दें, जैसा मां की गोदी में बच्चा छोड़ देता है, ऐसा नदी की गोदी में अपने को छोड़ दें। नदी ले जायेगी। बहें...बहुत हलकापन लगेगा, मन का तनाव उतर जायेगा। बहें...सब छोड़ दें और बह जायें...बिल्कुल छोड़ दें। नदी भागी चली जाती है, देखें पहाड़ चमकते हैं धूप में। नदी भागी चली जाती है और आप भी बहे जा रहे हैं। अपने को बहता हुआ देखें...एक पांच मिनट तक बहते-बहते ही मन का बहुत-सा कूड़ा करकट बह जायेगा, चिंता, तनाव, अशांति बह जायेगी; हलका हो जायेगा सब। जैसे भीतर तक स्नान प्रवेश कर गया हो; जैसे आत्मा तक नहा गयी हो—ऐसी ताजगी हो जायेगी।

बहें...छोड़ दें अपने को। धूप में चमकते हुए पहाड़ हैं, नदी की धार है, ठंडी हवायें हैं, पक्षियों के गीत हैं और हम

बहे जा रहे हैं। नदी भागी चली जाती है, उसमें पड़े हम मुर्दे की भांति बहे चले जाते हैं। छोड़ते ही सब शांत हो जाता है, पकड़ ही अशांति है, तनाव है। छोड़ दें, फिर कैसा तनाव ? फिर कैसी अशांति ? नदी डुबा दे तो डूब जायें, नदी बहा दे तो बह जायें। नदी के साथ जरा भी विरोध न करें। देखें ...बहें...अपने को बहता हुआ देखें। यह अनुभव ठीक से कर लें बहने का, ध्यान की पहली सीढ़ी यही है। बह रहे हैं, बह रहे हैं बह रहे हैं; तैर नहीं रहे हैं, कुछ कर नहीं रहे हैं। नदी बहाये लिए जा रही है। आपको कुछ भी नहीं करना है, बस, बह जाना है। देखें मन बिल्कुल शांत हो जायेगा। एक ताजगी घेर लेगी...मन बिल्कुल मौन हो गया है, हलका, भारहीन, प्रफुल्लित हो गया है। मन स्वच्छ हो गया है, जैसे आत्मा तक नहा गई हो।

जो जीवन की सरिता में बहना सीख गया है, वह तनाव से मुक्त हो जाता है, वह शांत हो जाता है।

अब धीरे-धीरे नदी से बाहर निकल आयें, किनारे पर खड़े हो जायें। नदी अब भी बही जा रही है, किनारे पर खड़े होकर दो क्षण अनुभव करें, नदी के बहने में कैसा सुख, कैसी शांति, कैसा आनन्द भीतर भर दिया है ! किनारे पर खड़े होकर पहचानें, अनुभव करें दो क्षण कि बहने के पहले और बहने के बाद में भीतर कुछ फर्क पड़ा ? मन कुछ हलका, शांत, ताजा हुआ ? नया हुआ ? कैसा सब ताजा शांत हो गया ! बाहर निकल आये हैं। अब धीरे-धीरे आंख खोलें और दूसरा प्रयोग समझें।

पहला प्रयोग है बहने का। 'फ्लोटिंग' ध्यान की पहली सीढ़ी है। दूसरा प्रयोग है, मरने का, मृत्यु का,, मिट जाने का, जैसे कोई बीज मिटता है तो फिर अंकुर हो जाता है, जैसे कोई कली मिटती है तो फिर फूल हो जाती है। जब कुछ

मिटता है, तभी कुछ हो पाता है। जब हम आदमी की तरह मिटेंगे, तभी हम परमात्मा की तरह हो पायेंगे। जन्म की पहली कड़ी मृत्यु है। और जो मरना नहीं सीख पाता, मिटना नहीं सीख पाता, वह कभी भी उस विराट तक नहीं पहुंच पाता, जहां तक पहुंचने में सब कुछ छूट जाना जरूरी है। जीसस का एक वचन है—"जो अपने को बचायेंगे, वे मिट जायेंगे और जो मिट जाते हैं, वे बचा लिए जाते हैं।"

तो दूसरा प्रयोग है, ध्यान की दूसरी सीढ़ी 'मिट जाने की' ध्यान हम करते हैं तो परमात्मा कुछ करता है, हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता है। हमें इतना ही करना पड़ता है कि हम उसे बाधा न दें और वह जो करना चाहता है, उसे करने की सुविधा दें। हम उसे करने देंगे। हम अपने को खुला छोड़ देंगे, वह आ जाये और जो उसे करना हो करे। सूरज निकला हो घर के बाहर और घर में अन्धेरा हो। हमने द्वार बन्द किये हैं और हम किसी से पूछें कि हमें सूरज की किरणों को भीतर लाना है, हम क्या करें ? तो वह कहेगा; तुम कुछ न करो, सिर्फ द्वार खुले छोड़ दो; ताकि सूरज भीतर आ सके। तुम रोको मत, सूरज भीतर आ जायेगा। तुम छोड़ दो द्वार खुला। सूरज को गठरियों में बांधकर तो भीतर नहीं लाया जा सकता। उसकी किरणों को मुट्ठियों में बांध कर तो हम घर के भीतर नहीं ला सकते, डिब्बों में बन्द करके तो भीतर नहीं ला सकते हैं, हम सिर्फ एक काम कर सकते हैं—'नेगेटिवली'—नकारात्मक और वह यह कि हम दरवाजा खुला छोड़ सकते हैं। फिर सूरज आ जायेगा। परमात्मा की अनन्त शक्तियां इतना कर सकती हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। हम सिर्फ बाधा न दें। हम बीच में खड़े न हों। हम छोड़ दें और कहें कि जो होना है, वह हो। दूसरा प्रयोग और भी गहरा है। बहते हैं, लेकिन फिर भी हम हैं। तैरते नहीं हैं

तो भी हम हैं । हमारा होना भी बाधा है । दूसरे प्रयोग में होने को भी मिटा देना है।

बुद्ध तो ऐसा करते थे कि जो ध्यान सीखने आते उनके पास, उन्हें तीन महीने के लिए मरघट पर बिठा देते थे । तीन महीने मरघट पर ही निवास करना पड़ता, ध्यान करने वाले को और जब भी कोई लाश जलने आती तब उसे चिता के पास खड़ा हो जाना पड़ता । दिन में दो-चार-दस लोग भी मरते । रात मरघट सुनसान होता और ध्यान यह था कि जब लाश जलती हो किसी की, तो वह जो ध्यानी है, वह किनारे खड़ा हो जाये और अनुभव करता रहे कि मैं ही जल रहा हूं, मैं ही जल रहा हूं । यह और कोई नहीं जल रहा है, चिता पर मैं ही जल रहा हूं । तीन महीने में उस आदमी का शरीर बोध नष्ट हो जाता । तीन महीने में 'मैं शरीर हूं' यह कल्पना ही मिट जाती । 'मैं शरीर हूं', यह भाव ही टूट जाता । तीन महीने निरन्तर अपने को चिता पर चढ़ा कर वह अनुभव कर पाता कि मैं अलग हूं—मैं पृथक् हूं ।

अब हम दूसरा प्रयोग करेंगे । यह ख्याल में ले लेंगे अनुभव ताकि फिर ध्यान में वे अनुभव हम काम में ला सकें, दूसरा प्रयोग करने के लिए बैठें पांच मिनट के लिए मृत्यु के अनुभव में उतरें । आंख बन्द हो जाने दें । पलकों को ढीला छोड़ दें, ताकि आंख बन्द हो जाये । शरीर को ढीला छोड़ दें । बिल्कुल ढीला छोड़ दें । उसको हमें पकड़कर नहीं रखना है । वह छोड़ ही दिया और आंख बन्द हो गयी है । और कोई किसी दूसरे की फिक्र में न रहे । क्योंकि दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है कि आप बीच-बीच में किसी को देखें कि किसको क्या हो रहा है । किसी से कोई मतलब नहीं । आपको क्या हो रहा है, यह सवाल है। किसी को कुछ हो रहा है या नहीं हो रहा है, यह मूल्य ही नहीं है कुछ । तो किसी को, किसी दूसरे को देखने

की फिक्र छोड़ देनी चाहिए, अन्यथा वह दूसरे को देखने में अपने को देखने से वंचित रह जायेगा । आंख बन्द करने को इसलिए कहता हूं, ताकि आप दूसरे की फिक्र छोड़ दें । भीतर अकेले ही रह जायें ।

आंख बन्द कर लें और अब दूसरा चित्र देखें । आंखों के सामने एक चिता जल रही है । जोर से चिता में लपटें उठ रही हैं । चिता के चारों तरफ अंधेरे में भी चेहरे पहचाने जा सकते हैं । आपके मित्र, प्रियजन सब इकट्ठे हो गये हैं । बहुत बार मरघट पर गये होंगे, लेकिन किसी और को जलाने । आज अपने को ही जलाने आप भी पहुंच गये हैं सबके साथ । चिता जल गयी है । चिता की लपटें बढ़ती चली जा रही हैं । ठीक से चिता को देख लें, क्योंकि इसी चिता पर थोड़ी देर में चढ़ जाना है । अभी हम नदी में बहे थे, अब आग में बह जाना है । नदी बहा सकती है, आग मिटा ही देती है । देख लें ठीक से आंखों के पर्दे पर आग जल रही है, चिता जल रही है । जोर से लपटें उठती हैं आकाश की तरफ । घेरा बांध कर मित्र, प्रियजन सब इकट्ठे खड़े हैं, उनके चेहरे भी दिखायी पड़ते हैं । आग की लपटों में उनके चेहरे चमकते हैं । आग की लपटों को ठीक से देख लें । अभी इसमें हमें ही उतर जाना है । यह किसी और की चिता नहीं है, हमारी ही चिता है । देखें चिता जल रही है और आप ही चिता पर चढ़ा दिये गये हैं । लाल लपटें आकाश की तरफ उठ रही हैं, चिता पूरी सुलग गयी है और मित्र, प्रियजन, बन्धु सब आपकी अर्थी खोल रहे हैं और आपकी लाश को आपके प्रियजन चिता पर रख रहे हैं । किसी और को बहुत बार चिता पर चढ़ाया, किसी दिन हमको बहुत और लोग चढ़ायेंगे । ध्यान में हम खुद ही अपने को चढ़ा के देख लें कि क्या होगा ! चढ़ा दें चिता पर । हवायें तेज हैं, लपटों को उभाड़ती है भभकाती हैं; और चिता पर कोई और

नहीं चढ़ा है, हम ही चढ़े हैं, हम ही पड़े हैं—वह भी देख लें ठीक से कि हम ही जल रहे हैं। अब चिता ही नहीं जल रही, आप भी जल रहे हैं।

किसी मित्र ने पूछा है कि चढ़ा तो देता हूं चिता पर अपने को, लेकिन फिर भी मैं तो किनारे खड़ा देखता रहता हूं। निश्चित ही, कुछ हमारे भीतर है, जो सच में ही हम चिता पर चढ़ेंगे तो भी किनारे खड़े होकर ही देखता रहेगा। कल्पना की चिता पर ही नहीं, असली चिता पर भी जब आप चढ़ेंगे, मैं चढ़ूंगा तो कुछ है, जो किनारे खड़ा होकर देखता रहेगा। कुछ है, जो बाहर खड़े होकर देखता रहेगा। शरीर तो चढ़ा दिया जा सकता है चिता पर, लेकिन कुछ है भीतर—जो चिता पर चढ़ ही नहीं सकता, जिसे कोई अग्नि नहीं जला सकती, जिसकी कोई मृत्यु नहीं, वह तो बाहर खड़े होकर देखता रहेगा। अपने को जलता हुआ अगर ठीक से देख लें तो हम दूसरे ही आदमी हो जायेंगे। बाद में हम वही आदमी कभी नहीं हो सकते, जो चिता पर चढ़ने के पहले थे। कुछ तो हम में जल ही जायेगा। कुछ तो हम में नष्ट हो ही जायेगा। देखते रहें पांच मिनट तक स्वयं को जलते हुए। अपने को जलता हुआ देखें···। थोड़ी देर में सब राख हो जायेगा, सब मिट जायेगा। न चिता रह जायेगी, न हम रह जायेंगे। थोड़ी-सी राख मरघट पर पड़ी रह जायेगी। एक पांच मिनट के लिए अपने को जला हुआ देखें। सब जल रहा है। भागने का मन होगा, भाग नहीं सकते हैं, मर ही गये हैं, भागेंगे कहां? चिता से उतर आने का मन होगा, उतर नहीं सकते हैं। उतरेगा कौन? थोड़ी देर में राख बनने लगेगी। ये मित्र, प्रियजन विदा हो जायेंगे। मरघट शान्त सन्नाटे में रह जायेगा। ठीक से देखें, चढ़े हैं चिता पर, जल रहे हैं। आग की लपटें उठ रही हैं, सब जला जा रहा है, हम भी जले जा रहे हैं।

पांच मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं। छोड़ दें आग में अपने को। आग जोर पकड़ती जा रही है और हम जल रहे हैं। अपने को जलता हुआ देखें। थोड़ी देर में राख पड़ी रह जायेगी, मरघट पर सन्नाटा हो जायेगा। सब जल जायेगा, सिर्फ वही बच रहेगा, जो जल नहीं सकता है। जो जल सकता है, वह जल जायेगा। और उसी की तो हमें पहचान करनी है, जो जल न सके। जो जलता है, उसे जल जाने दें। देखें··· आग लगी है, चिता की लपटें जल रही हैं, आप भी जले जा रहे हैं, जले जा रहे हैं, जले जा रहे हैं···लपटें बढ़ती जाती हैं, शरीर जलता जा रहा है। थोड़ी देर में सब राख हो जायेगा। हम ही राख हो जायेंगे और अपने को राख हुआ देखना बड़ा गहरा अनुभव है। देखें···सब राख हुआ जा रहा है—सब जलता जा रहा है। इधर लपटें बढ़ती हैं, उधर राख बढ़ रही है। हम जले जा रहे हैं, समाप्त हुए जा रहे हैं।

लपटों के पास कौन होगा? अब वे दूर खड़े हैं, बहुत बेरहम लपटें उनको झुलसाती हैं। राख से कौन प्रेम करेगा? राख के लिए कौन रुकेगा? अब वे जा रहे हैं। मित्र, प्रियजन बन्धु सब आखरी नमस्कार करने आये हैं। मित्र, प्रियजन जाने शुरू हो गये हैं। उनकी पीठ दिखायी पड़ने लगी, मुंह और दिखायी नहीं पड़ता। लौट रहे हैं। आखिर वे मरघट में कब तक खड़े रहें? वे जाने लगे हैं, वे जा रहे हैं, वे वापिस चल पड़े हैं, उनके पदचाप पैरों के सुनायी पड़ने लगे हैं। वे जा चुके हैं। मरघट अकेला रह गया, चिता ही रह गयी। बिल्कुल मिट जाना है, मिट जायें···।

अब मरघट पर कोई भी दिखायी नहीं पड़ता है। लपटें भी बुझने लगीं, राख का ढेर रह गया है। मरघट पर सन्नाटा छा गया है। सब मिट जायेगा। थोड़ी देर में अंगारे भी बुझ जायेंगे और राख पड़ी रह जायेगी। देखते रहें, अपने को मिटते

देखना बहुत गहरा अनुभव है। ध्यान की दूसरी सीढ़ी वही है। मरघट निर्जन हो गया। अंधेरा घिर गया और राख का ढेर इकट्ठा हो गया। लपटों की आवाज भी बन्द हो गयी। अंगारे भी बुझने लगे हैं। राख का ढेर पड़ा है।

देखें···ठीक से देखें मरघट पर कोई नहीं है। अंधेरी रात है, अंधेरे में दबी राख भर पड़ी रहो, सब सुनसान है, अंगारे बुझ गये हैं लपटें बुझ गईं, मरघट एकांत अकेला। अंधेरे में डूबा। एक ढेर है राख का, हमारी ही राख का। ···हम मिट गये हैं। राख का एक ढेर और मरघट और सन्नाटा है। हवायें आती हैं और राख उड़ जाती है। इस राख को सम्हालने को भी कोई न रहा। यही हैं हम! यही थे हम! राख के इस ढेर को ठीक से पहचान लें, यही है वह चेहरा, जिसको बहुत बार दर्पण में देखा है। यही है वह शरीर, जिसे जीवन भर, अनेक-अनेक जीवन सम्हाला। यह राख का ढेर बहुत बड़ी सच्चाई है। इसे ठीक अनुभव कर लें। ध्यान का दूसरा चरण यही है। सब मिट गया है, सब मिट गया है, सन्नाटा है। राख का ढेर पड़ा है, उसे ठीक से देखें···देख लिया? राख के ढेर को, अपने होने को, अपनी आखिरी परिणति को?

स्वयं का मिट जाना ध्यान का दूसरा चरण है। मिट्टी, मिट्टी में मिल गयी है। इस भाव के आते ही कि सब मिट गया है, गहरी शान्ति उतर जायेगी। प्राण के भीतरी कोने तक सन्नाटा छा जायेगा। जब हम ही मिट गये तो कैसी चिन्ता, कैसी अशान्ति, कैसा दुख, कैसी पीड़ा! सब समाप्त हो गया। शून्य भीतर रह गया। और न मालूम इसी राख के ढेर ने कितने सपने देखे! न मालूम क्या-क्या सोचा, बनाया, बिगाड़ा! अब? अब मिट्टी हो चुके हैं! जो मिट सकता है, वही प्रभु को पा सकता है। जो मिटने में असमर्थ है, वह उसे पाने का पात्र भी नहीं है। प्रभु के चरणों में यही

समर्पित करना है—अपनी ही राख, अपनी ही मृत्यु, अपना ही मिट जाना और उसके द्वार खुल जाते हैं···रूप तो मिट गया अब अरूप रह गया है। आकार तो मिट गया, अब निराकार रह गया है। देह तो मिट गई, आत्मा रह गयी है।

अब धीरे-धीरे आंख खोल लें, फिर तीसरा प्रयोग समझें और पांच मिनट के लिए तीसरा प्रयोग करें।

पहला प्रयोग है, बहने का अनुभव। दूसरा प्रयोग है, मरने का अनुभव। और तीसरा प्रयोग है तथाता। तीसरा प्रयोग सबसे गहरा प्रयोग है। उसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। तथाता का अर्थ है—चीजें जैसी हैं वैसी हैं। हमें उनसे कोई विरोध नहीं। पक्षी आवाज कर रहे हैं, कर रहे हैं। धूप गर्म है। हवायें चलती हैं और ठण्ड मालूम पड़ती है। जिन्दगी जसी है, वैसी हमें स्वीकार है। न हम उसमें कोई बदल करना चाहते हैं, न कोई हेर-फेर करना चाहते हैं। हमारा कोई विरोध नहीं, हमारी कोई अस्वीकृति नहीं है। तथाता का अर्थ है थिंग्स आर सच—चीजें ऐसी हैं और हम उनके लिए राजी हैं। तथाता का अर्थ है, परिपूर्ण राजी हो जाना, टोटल एक्सेप्टिबीलिटी।

जब हम किसी चीज के लिए पूरी तरह राजी हो जाते हैं तो चित्त की सब अशान्ति खो जाती है। तब चित्त का सर्व रोग, सब बीमारी, विनष्ट हो जाती है। तब चित्त का सब तनाव समाप्त हो जाता है। हमारे मन का तनाव और अशांति हमारे विरोध से पैदा होती है। हम चाहते हैं, चीजें ऐसी हों। अब एक कौवा आवाज करेगा, एक पक्षी चिल्लायेगा और हम चाहेंगे कि ध्यान कर रहे हैं, पक्षी चुप हों। लेकिन पक्षियों को आपके ध्यान से क्या प्रयोजन? हवायें चलेंगी और हम चाहेंगे, हवायें न चलें, थोड़ी देर ठहर जायें। रास्ते पर गाड़ियां निकलेंगी, आवाज होगी, हॉर्न बजेगा और हम चाहेंगे, यह सब बड़ी बाधा, बड़ा डिस्टरबेन्स, तब फिर ध्यान में आप

कभी भी न जा सकेंगे।

जिन्दगी आपके लिए ठहर नहीं सकती है। जिन्दगी चलेगी, चलती रहेगी। फिर क्या रास्ता है? जो लोग भी ध्यान करने बैठते हैं, उनकी परेशानी यह है कि कभी कोई रास्ते पर हॉर्न बजा देता, कभी कोई बच्चा रोने लगता, कभी कोई कुत्ता आवाज करने लगता, कभी कोई सड़क पर झगड़ा हो जाता, उनकी मुसीबत यह है कि 'डिस्टरबेन्स' हो जाते हैं। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगर तथाता की बात समझी तो इस दुनिया में डिस्टरबेन्स जैसी चीज है ही नहीं। तथाता का मतलब है, जो हो रहा है, हमें स्वीकार है। डिस्टर-बेन्स का सवाल कहां है। 'डिस्टरबेन्स' तो तब होता है, दिल में बाधा तब होती है, जब हम कहते हैं, ऐसा न हो और होता है, तब परेशानी होती है।

लेकिन हम कहते हैं, जैसा हो रहा है वैसा हो रहा है, हम राजी हैं। हॉर्न बजता है तो हम सुनने को राजी हैं। बच्चा रोता है तो हम सुनने को राजी हैं। पक्षी चिल्लाते हैं तो हम सुनने को राजी हैं। हमारा कोई विरोध ही नहीं। हम इस जीवन में एक विरोधी की तरह खड़े नहीं होते हैं। हम इस जीवन को एक मित्र की तरह स्वीकार कर लेते हैं। स्वीकृति का भाव ध्यान की गहरी से गहरी बात है। और जो व्यक्ति सब स्वीकार कर लेता है, वह व्यक्ति सबसे मुक्त हो जाता है। जहां तक हमारा विरोध है, वहां तक हमारा बन्धन है। जहां तक हम अकड़े हैं, वहां तक हमारी मुसीबत है। जहां तक हम कह रहे हैं, ऐसा हो, ऐसा न हो, वहां तक परेशानी है। लेकिन जब हम कहते हैं, जैसा हो रहा है, वैसा हो रहा है, हमें स्वीकार है, हम राजी हैं, हम भी उसी के एक हिस्से हैं, तब फिर सब विरोध खो जाता है।

तथाता ध्यान का केन्द्र है। जो है, हम उसके वैसे होने से

पूरे राजी हैं। हम उससे अन्यथा की मांग करते हैं, न आकांक्षा करते हैं। पक्षी हैं, चिल्लायेंगे ही; पत्ते हैं, हिलेंगे ही; आवाज करेंगे ही, शोरगुल होगा। हम स्वीकार करते हैं। तथाता का अर्थ है—हमें सब स्वीकार है, कोई विरोध नहीं। और जब कोई विरोध न हो तो अशांति कहां, बाधा कहां, तब कोई भिन्न कहां? और जब कोई विरोध न हो तो चित्त एकदम विलीन हो जाता है, वह शून्य हो जाता है। विरोध में ही हम खड़े होते हैं और मजबूत होते हैं। विरोध में ही अहंकार निर्मित होता है। जितना मैं कहता हूं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, उतना ही मैं मजबूत होता चला जाता हूं। जब मैं कहता हूं, जैसा है, है, ऐसा ही सही, ऐसा ही सही, ऐसा ही सही तो 'मैं' के खड़े होने का उपाय कहां!

जीवन जैसा है, अगर स्वीकृत है तो अहंकार के बनने का उपाय नहीं। अस्वीकार से आता है, अहंकार, निर्मित होता है, घना होता है, मजबूत होता है। जब मैं कहता हूं—पत्ते ऐसे न हों, चांद ऐसा न हो, हवाएं ऐसी न हों, पक्षी आवाज न करें, रास्ते पर सन्नाटा हो, तब मैं यह कह रहा हूं कि मेरी आज्ञा से सब चलें। मैं सब के ऊपर बैठ जाऊं, मैं मालिक हो जाऊं। लेकिन जब मैं यह कह रहा हूं—जो जैसा चले, धन्य भाग; जो जैसा चले, स्वीकार; जो जैसा है चले, आभार है; जो जैसा है, कृतज्ञ हूं; जो जैसा चल रहा है, ठीक है, तब मैं अपने को थोपता नहीं। तब मैं विदा हो जाता हूं। तब मैं सबके साथ एक हो जाता हूं।

तथाता का अर्थ है—सर्व स्वीकृत—टोटल एक्सेप्टेन्स, जो है, वैसा ही स्वीकार है। और अगर पांच मिनट भी सब स्वीकार किया तो हैरान हो जायेंगे कि मन कैसी शांति के नये लोकों में प्रवेश कर जाता है। सबके लिए राजी होने से सबके प्रति प्रेम बहना शुरू हो जाता है।

तीसरे प्रयोग की गहरी दिशा में अब एक ही हो जाना है उस सब से, जो है। पक्षियों की आवाजें हैं, वे पक्षियों की ही नहीं, हमारी ही आवाजें हो जायेंगी। और हवायें बह रही हैं, उनके झोंके पत्तों को हिला रहे हैं, वे हवाएं न रहेंगी, वे हम ही हो जायेंगे। और पत्ते हिल रहे हैं सूरज की धूप में चमक रहे हैं; हवाओं में नाच रहे हैं—वे पत्ते न रह जायेंगे, वे हम ही हो जायेंगे। जो भी है, उसके साथ हम एक हो जायें। कैसे एक हो सकते हैं? स्वीकार से। अगर सब हमें स्वीकार हो जाये तो हमारा भेद गिर जाता है।

अद्वैत को वही उपलब्ध होता है, अभेद को वही उपलब्ध होता है, जो सर्व स्वीकार को उपलब्ध हो जाता है। जिससे हम विरोध करते हैं, उससे हम टूट जाते हैं। जिससे हमारा विरोध नहीं, उससे हम जुड़ जाते हैं। जिसे हम इन्कार करते हैं, उसके हमारे बीच सीमा खिंच जाती है। अगर हम सर्व और अपने बीच कोई सीमा न खींचें, कोई भेद-रेखा न खींचें, कोई विरोध न बांधें, तो सर्व और हमारे बीच न कोई रेखा है, न कोई भेद है, न कोई विरोध है। हमारा खींचा हुआ विरोध है, हमारी खींची हुई रेखा है। उस रेखा को हम अभी पोंछ डाल सकते हैं।

ध्यान के तीसरे प्रयोग में उस रेखा को बिल्कुल पोंछ डालना है। तब ऐसा अनुभव नहीं करना है कि मैं यहां हूं और वहां पक्षी आवाज कर रहे हैं। ना, जो आवाज कर रहा है पक्षियों में, वही यहां सुन भी रहा है। विरोध कैसा! किसका विरोध? मैं ही आवाज कर रहा हूं, मैं ही सुन रहा हूं। सर्व स्वीकार से—ऐसी प्रतीति होनी शुरू हो जाती है। ट्रेन के पहियों की आवाज उसकी सीटी का शोर, वह हमारे भीतर ही उठता हुआ मालूम पड़ेगा। ऐसा लगेगा, हम फैलकर बहुत बड़े हो गये हैं। सारे जगत् को घेर लिया और सब

हमारे भीतर ही हो रहा है। 'थिंग्स आर सच' चीजें ऐसी हैं, और हमने उन्हें स्वीकार कर लिया—हमारा कोई विरोध नहीं।

एक फकीर के पास एक आदमी गया था। और उस फकीर से उसने कहा कि आप तो बहुत शांत हैं और मैं बहुत अशांत हूं, तो मुझे शांत होने का रास्ता बता दें। उस फकीर ने कहा रास्ते की क्या जरूरत है? मैं शांत हूं, तुम अशांत हो। मैं अपनी शांति में राजी हूं, तुम अपनी अशांति में राजी हो जाओ उस आदमी ने कहा, मैं कैसे राजी हो जाऊं? मैं अशांत हूं, मुझे अशांति मिटानी है। उस फकीर ने कहा, जब तक मिटाना है, तब तक तुम शांत न हो सकोगे। अपनी अशांति में राजी हो जाओ, फिर देखो अशांति बचती है या नहीं बचती! अगर कोई अपनी अशांति में राजी हो जाये तो अशांति फिर कहां है? अशांति तो नाराजी में थी, अशांति तो विरोध में थी, अशांति तो इस बात में थी कि नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए, अशांति नहीं होनी चाहिए, मुझे शांत होना है। उस आदमी ने कहा, आप ठीक कहते हैं, लेकिन मुझे शांत होना है। उस फकीर ने कहा, फिर तो तुम न हो सकोगे। और मैं तो कभी तुम्हारे पास पूछने न आया था कि तुम बड़े अशांत हो, मैं बड़ा शांत हूं तो मुझे अशांत होना है। मैं किसी के पास पूछने नहीं गया था। मैं जैसा था, मैं वैसे को ही राजी हो गया और फिर मैं शांत हो गया। शांति परिणाम है, हम जैसे हैं, वैसे ही राजी होने का अंतिम फल है। शांत कोई भी नहीं हो सकता। जो, जो है, वैसा ही होने को राजी हो जाये, शांति पीछे चली आती है छाया की तरह।

उस आदमी ने कहा, फिर भी मेरी समझ में नहीं आता उस फकीर ने उसका हाथ पकड़ा और मकान के बाहर ले आया। वहां आकाश को छूता हुआ एक बड़ा दरख्त था। ऊपर चांद

निकला है, ऊपर आकाश तक उठ गया है वृक्ष और पास में ही एक छोटा-सा पौधा भी है। उस फकीर ने कहा, देखते हो उस दरख्त को ? उस आदमी ने कहा, हां, देखता हूं, बहुत बड़ा है। आकाश को छूता है । और उस फकीर ने कहा, देखते हो इस छोटे से पौधे को ? उसने कहा, हां, देखता हूं, बड़ा छोटा है बेचारा ! उस फकीर ने कहा, बीस साल से मैं यहां हूं, लेकिन मैंने इस छोटे पौधे को बड़े दरख्त से कभी पूछते नहीं देखा कि तू बहुत बड़ा है, मैं बहुत छोटा हूं, मैं बड़ा कैसे हो जाऊं ? मैंने इनके बीच कभी चर्चा नहीं सुनी है। छोटा अपने छोटे होने में राजी है और इसलिए छोटा नहीं रह गया। क्योंकि छोटा तो वह तभी मालूम पड़ सकता है, जब वह छोटे होने को राजी न रह जाये और बड़े की कामना करने लगे। बड़ा अपने बड़े होने में राजी है इसलिए बड़ा नहीं है; क्योंकि बड़े का कोई सवाल ही नहीं है । किसी से उसने तुलना ही नहीं की है।

वह फकीर कहने लगा, यह छोटे में राजी है, वह बड़े में राजी है, दोनों बड़े मजे में हैं। छोटा, छोटा है। बड़ा, बड़ा है। कोई झंझट नहीं, कोई झगड़ा नहीं, कोई तुलना नहीं, कोई अशांति नहीं। उस आदमी ने कहा, लेकिन, फिर भी नहीं समझा मैं। तो उस फकीर ने कहा कि तू अपनी नासमझी में ही राजी हो जा। अब तू समझने की भी कोशिश मत कर। जा और समझ ले कि मेरी समझ में नहीं आता और इसके लिए राजी हो जा।

तथाता का मतलब है, अज्ञान के लिए भी, अशांति के लिए भी, जो भी हमारे भीतर-बाहर है—सबके लिए राजी हैं। एक पांच मिनट के लिए अविरोध का प्रयोग करें, स्वीकार के भाव में डूब जायें। यह भी स्वीकार है, वह भी स्वीकार है। अविरोध के भाव में लीन हो जायें। श्वास-श्वास में रोयें-

रोयें में स्वीकार की भावना भर जाये, तो पांच मिनट में आप पायेंगे, ऐसे आनन्द के स्रोत खुल गये हैं, जो बिल्कुल अपरिचित थे—ऐसे द्वार खुल गये हैं, जो सदा बन्द थे—और ऐसी शांति बह गई चारों तरफ, जिसे हमने कभी न जाना था।

तो तीसरा प्रयोग पांच मिनट करें और फिर चौथा प्रयोग ध्यान का होगा । इन तीनों के जोड़ से ध्यान निकलेगा। तथाता का तीसरा प्रयोग करें। आंख बन्द कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें । आंख को बन्द हो जाने दें और शरीर को ढीला छोड़ दें। शरीर के ढीले होने का मतलब है, हम अपने चारों तरफ से एक हो गये, अलग न रह गये। अब जो कुछ भी हो रहा है, उसे चुपचाप अनुभव करते रहें, जानते रहें; विरोध न लें । गाड़ी आवाज करती है, पक्षी गीत गाते हैं, सब स्वीकार कर लें। जो भी हो रहा है, हो रहा है, हम राजी हैं—इसको भीतर मन में घूम जाने दें। हम राजी हैं, जो भी हो रहा है। हमारा कोई विरोध नहीं। जो भी हो रहा है, जो भी हो रहा है, हम राजी हैं। और बाहर ही नहीं, भीतर भी राजी हैं। अगर पैर शून्य हो गया, अगर पैर को चींटी काटती है, हम उसके लिए भी राजी हैं। हमारा कोई विरोध नहीं है। बाहर भीतर सब तरफ राजी हैं।

एक पांच मिनट के लिए तथाता की स्थिति में अपने को छोड़ दें । धूप पड़ रही है चेहरे पर, पसीना बहने लगे, हम राजी हैं। ठीक है, धूप पड़ेगी पसीना बहेगा और जब हम राजी होंगे, तब धूप भी बड़ी शीतल मालूम पड़ने लगेगी। देखें, सड़क की आवाज भी बहुत प्रीतिकर मालूम होगी, जब हम राजी हों। जब हम राजी हैं, तब सारा जगत् प्रीतिकर अनुभव होने लगता है। और उसी प्रेम के द्वार से परमात्मा का आगमन होता है। जब हम राजी हैं, तब प्रेम और जब प्रेम, तब परमात्मा है।

अब पांच मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं।

आप राजी हो जायें। सब समग्र रूप से स्वीकार कर लें और फिर देखें मन कैसा शांत हो जाता है, जैसा कभी न हुआ होगा। मन के भीतर शांति के झरने फूट पड़ते हैं, जैसे कभी न फूटे होंगे। एक भीतर प्रकाश छा जाता है। एक आलोक शीतल, एक ठंडी प्रकाश की छाया फैल जाती है। देखें, चुप-चाप अनुभव करें। जो है, है और हम राजी हैं। पक्षियों आवाज करो ! हवाओं बहो ! सूरज तपो ! हम राजी हैं···राजी हैं···हम राजी हैं, हम राजी हैं, जो भी है उसके लिए हम राजी हैं—हमारा कोई विरोध नहीं। हम इस बड़े जगत् के एक हिस्से मात्र हैं। इन हवाओं के भी हम हिस्से हैं। इन आवाज करते पक्षियों के भी, इस तपती हुई धूप के भी, सड़क पर होते शोरगुल के भी—हम इस बड़े जगत् के एक हिस्से हैं। हिस्सा विरोध कैसे कर सकता है ? हमारा कोई विरोध नहीं ! हम राजी हैं। हम बिल्कुल राजी हैं। छोड़ दें अपने को इस स्वीकृति में। जो भी हो रहा है, ठीक है, शुभ है। जो भी हो रहा है, सुन्दर है। जो भी हो रहा है, हम राजी हैं, हमारा कोई विरोध नहीं। और देखें, मन कैसा मौन होता चला जाता है। और देखें, भीतर कैसा नया प्रकाश फैलने लगता है। और देखें, मन कैसी शांति से भरता चला जाता है···ट्रेन की आवाज कैसी प्रीतिकर है। पक्षियों की आवाजें हैं, हवाओं की आवाज है···वृक्ष का, पत्तों का हिलना—सब स्वीकार है। जीवन जैसा है, स्वीकृत है। स्वीकार···स्वीकार···समग्र स्वीकार···जो भी है, स्वीकृत है। और जैसे ही स्वीकार होता है, हम समस्त के एक हिस्से मात्र हो जाते हैं। फिर सूरज अलग नहीं, पक्षी अलग नहीं, वृक्ष अलग नहीं, पृथ्वी अलग नहीं, आकाश अलग नहीं, कोई अलग नहीं, सब जुड़ गया, सब एक हो गया। हम सबके साथ

एक हो जाते हैं। छोड़ दें···सब स्वीकार कर लें···फिर धूप अलग नहीं, वृक्षों की हलचल अलग नहीं, यह पक्षियों की आवाज अलग नहीं, अब सब एक हैं। यह जो विराट का सागर है उसमें लीन हो जायें—एक हो जायें।

ठीक से अनुभव कर लें तथाता को, इस स्वीकृति को, इस राजी होने को। यह ध्यान का तीसरा चरण है। ठीक से पहचान लें, क्या अर्थ है स्वीकार का। देखें.........भीतर कहीं कोई विरोध तो नहीं। देखें, भीतर कहीं किसी चीज को इन्कार करने का भाव तो नहीं। देखें कहीं किसी चीज के कारण भीतर वहम और बाधा तो नहीं बनती ! अनुभव कर लें, सब स्वीकृत है, सब स्वीकृत है, जो हो रहा है, स्वीकृत है। अस्वीकार है ही नहीं। तथाता ध्यान की आत्मा है, प्राण है। स्वीकार करते ही शांति का द्वार खुलता है। जगत् से कोई विरोध नहीं; क्योंकि हम जगत् के ही हिस्से हैं। विरोध कैसा ! दुश्मनी कैसी ! शत्रुता कैसी ! और तब प्राणों का बाहर के प्राणों से मिलन हो जाता है। छोड़ दें। भाव उठेगा, विचार चलेगा, स्वीकार.........स्वीकार.........श्वास-श्वास में एक ही निवेदन—सब स्वीकर है.........रोयें-रोयें में एक ही प्रार्थना, एक ही पुकार—सब स्वीकार है.........मन गहरे अर्थों में शून्य होता जा रहा है। सीमायें गिर जायेंगी और सब एक हो जायेगा देखें—भीतर कोई विरोध तो नहीं, कोई अस्वीकृति तो नहीं है। हो, तो विदा कर दें। हम समग्र के लिए पूर्ण राजी हैं। श्वास-श्वास शांत हो गयी। देखें—भीतर एक सन्नाटा छा गया है।

अब गहरी श्वास लें और धीरे-धीरे आंख खोल लें फिर ध्यान का प्रयोग समझें और फिर हम अन्तिम प्रयोग ध्यान का करेंगे।

ये तीन प्रयोग समझने के लिए किये। ये तीन चरण हैं ध्यान

के। पहला प्रयोग है बह जाने का। प्रयोग हमने इसलिए किये, ताकि शायद शब्द से समझ में न आये तो अनुभव से समझ में आ जाये, इसलिए कल्पना की। तैरने और बहने के विरोध को समझ लिया होगा। तैरना एक अहंकार है, बह जाना समर्पण है। दूसरा प्रयोग हमने किया मिट जाने का, समाप्त हो जाने का। अगर कोई बूंद, बूंद ही रहना चाहे तो फिर सागर को नहीं जान सकती। बूंद को सागर को जानना है तो मिटना पड़ेगा। लेकिन बूंद सागर में खो कर मिटती नहीं है, सागर हो जाती है। छोटे से और विराट हो जाते हैं। असल में छोटे हम हैं। अगर बड़े को जानना हो तो मिटना पड़ेगा। छोटा होना मिटे तो ही बड़ा होना हो सकेगा। क्षुद्र हम हैं, सीमा में बंधे हम हैं। सीमायें टूटें तो ही हम असीम हो सकें। लेकिन हम सब अपने को बचाने में लगे हैं।

ध्यान की दूसरी कड़ी है, अपने को बचाना नहीं; छोड़ देना, मिट जाना, समाप्त हो जाना है। निश्चित ही जो मिट सकता है, वही मिटेगा। जो नहीं मिट सकता है, वह नहीं मिटेगा। और हमारे भीतर दोनों हैं, वह भी जो मिट सकता है, वह भी जो नहीं मिट सकता है। जो मिट सकता है, वह मिटेगा ही। हम चाहें, चाहे न चाहें। जो नहीं मिट सकता है, वह हम चाहें तो भी नहीं मिट सकता है। वह रहेगा, रहेगा। तो दूसरा प्रयोग हमने किया चिता पर चढ़ जाने का, जल जाने का, राख हो जाने का। ध्यान में बहुत जरूरी है; क्योंकि मिटना पड़ेगा, मरना पड़ेगा। ध्यान स्वेच्छा से लाई गई मृत्यु का नाम है। तीसरा प्रयोग हमने किया तथाता का। तथाता का अर्थ है—चीजें जैसी हैं, उनकी स्वीकृति। और यदि कोई स्वीकार कर ले तो फिर अशांत ही नहीं हो सकता है।

अशांति आती है अस्वीकार से। तनाव आता है अस्वीकार

से हमारी जिन्दगी में सब चिंता और परेशानी आती है अस्वीकार से।

एक बैलगाड़ी जाती है, एक शराबी बैठा हुआ है। साथ में आप भी बैठे हुए हैं और बैलगाड़ी उलट जाये तो ध्यान रखना, आपको चोट लगेगी शराबी को चोट नहीं लगेगी। और बड़े मजे की बात है कि चोट शराबी को लगनी चाहिए थी; क्योंकि शराबी पिये हुए था। हमें क्यों चोट लग गयी? हम तो शराब पिये हुए न थे। लेकिन गाड़ी उलटे तो शराबी बच जाये और आपको चोट लग जाये! शराबी सब स्वीकार कर लेता है; क्योंकि होश ही नहीं है विरोध करने का। वह गिरता है पूरी तरह गिर जाता है। गिरने से भी बचने का भाव नहीं होता। जो होश में है, वह बचेगा। गाड़ी उलटेगी तो तन जायेगा, बचने की चेष्टा में लग जायेगा। हड्डियां खिंच जायेंगी, सजग हो जायेगा, तनी हुई हड्डियां चोट खा जायेंगी और टूट जायेंगी। शराबी रोज सड़क पर गिरता है चोट नहीं खाता; पर आप गिरें तो मुश्किल में पड़ जायें। रोज बच्चे गिरते हैं और चोट नहीं खाते हैं; हम गिरें तो हड्डियां टूट जायें। बच्चे गिरने को भी स्वीकार कर लेते हैं तो शरीर उसमें भी राजी हो जाता है। और जब कोई गिरने को भी राजी हो जाये तो फिर चोट लगनी बहुत मुश्किल हो जायेगी। उसके राजी होने के कारण विरोध बन्द हो जाता है।

जिन्दगी को स्वीकार के भाव से जो लेता है, जिन्दगी उसे चोट नहीं पहुंचा पाती और जो जिन्दगी का विरोध करता है, उसे जिन्दगी बहुत चोट पहुंचा जाती है, बहुत घाव कर जाती है, बहुत अल्सर बना देती है। जिन्दगी को जो पूरी तरह स्वीकार कर लेता है, जैसी जिन्दगी आती है, द्वार खोलकर राजी हो जाता है, उसे जिन्दगी कभी चोट नहीं पहुंचा पाती है।

इसलिए तीसरा प्रयोग है, स्वीकार का। क्योंकि परमात्मा को जानना है अगर तो जीवन को पूरी तरह स्वीकार करके ही तो जान सकेंगे। जिसे हम अस्वीकार करते हैं, उससे हमारी दुश्मनी हो जाती है। जिसका हम विरोध करते हैं, उसके लिए हमारे द्वार बन्द हो जाते हैं। अस्वीकार से हमारा चित्त बन्द—'क्लोज्ड'—हो जाता है। फिर वह खुलता नहीं है। लेकिन जब हम स्वीकार कर लेते हैं तो सब खुल जाता है। उस खुले मन में ही अवतरण होता है, वही द्वार बनता है। इसलिए तीसरा चरण है तथाता—सब स्वीकृति।

बहने का भाव, मिट जाने का भाव, सर्व स्वीकृति का भाव—ये तीन ध्यान के चरण हैं। इन तीनों को हमने अलग-अलग करके देखा और समझा। अब हम इन तीनों भावनाओं का इक्ट्ठा प्रयोग ध्यान में करेंगे। इस इकट्ठे प्रयोग में 'बहने के', 'मिटने के', जो 'है, है'—इसके स्वीकार के गहरे परिणाम होंगे। शरीर गिर सकता है, शरीर झुक सकता है। उसे फिर सम्हालकर बैठेंगे तो वहीं अटक जायेंगे। उसे सम्हालना नहीं है, गिरता हो गिर जाये। और घबड़ाना नहीं है कि चोट लग जायेगी। चोट कभी भी न लगेगी जब शरीर अपने आप गिरता है तो चोट नहीं लेता है। चोट का सवाल ही नहीं है। उसे सम्हालकर अगर बैठें तो फिर उतना 'रेजिस्टेंस' उतना विरोध शुरू हो जायेगा—फिर उतनी स्वीकृति न रही। आंख से आंसू बह सकते हैं। मन एकदम हलका होगा, आंख के आंसू गिर जायेंगे। उनको भी रोक लिया तो तकलीफ हो जायेगी। किसी को रोना भी आ सकता है तो उसे भी रोकने की जरूरत नहीं। उन पन्द्रह मिनटों के लिए, जो भी हो, हो, हमें उससे कोई बाधा नहीं। और कुछ भी निकल जायेगा तो अच्छा है। भीतर बहुत शांति और हलकापन छूट जायेगा।

अब हम चौथे प्रयोग के लिए बैठें।

ध्यान के प्रयोग में बैठने के पहले और मैं चाहूंगा कि आप थोड़े दूर-दूर हट जायें, ताकि—अब पूरा ही छोड़ना पड़ेगा शरीर को, वह गिर भी सकता है—गिर जाये तो चिंता नहीं लेनी है। अगर उसे रोकने में लग गए तो वहीं अटक जायेगा बिल्कुल। वह गिरता हो तो गिर जाये। इसलिए अब थोड़े फासले पर हट जायें। कुछ और मित्र आगे हैं, वे वहां जो खुली जगह है, वहां थोड़े हट जायें चुपचाप बिना आवाज किये, ताकि कोई गिरे तो किसी के ऊपर न गिर जाये, या किसी को अपने को सम्हालना न पड़े। और वहां कुछ मित्र पीछे बैठे हैं, अगर उनको प्रयोग न भी करना हो, तो कम से कम बातचीत न करें। वहां पीछे बात न करें और थोड़ा दूर हटकर बैठें। कोई लेटना चाहे तो पहले ही चुपचाप किसी कोने में जाकर लेट सकता है। आंख बन्द कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें।

और मैं थोड़ी देर सुझाव देता हूं। मेरे साथ अनुभव करें, ताकि शरीर पूरा-पूरा ढीला छूट जाये। मैं सुझाव देता हूं कि शरीर शिथिल हो रहा है और शरीर को शिथिल छोड़ते जायें, छोड़ते चले जायें। चाहे वह झुके तो झुक जाये, गिरे तो गिर जाये आप रोककर मत रखें। शरीर शिथिल हो रहा है, ऐसा भाव करें। शरीर शिथिल हो रहा है...अनुभव करें, छोड़ दें, जरा भी पकड़े नहीं। शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है। जैसे उसमें कोई प्राण ही न हों। छोड़े, नदी में बह गये थे, ऐसा शिथिल छोड़ दें। शरीर शिथिल होता जा रहा है। एक-एक अणु में ढीला और शिथिल होता जा रहा है। छोड़ते जायें ढीला, शरीर शिथिल हो रहा है। धीरे-धीरे शरीर बिल्कुल शिथिल हो जायेगा, पता होगा जैसे है ही नहीं। छोड़ दें, झुकता हो झुक जाये, गिरता हो गिर जाये। शरीर बिल्कुल शिथिल होते-होते भीतर एक गहरी शांति छा जायेगी। छोड़

दें शिथिलता में, जैसा नदी में छोड़ा था बह जाने को। एक-एक अंग ढीला छोड़ते जायें। भाव करते-करते शरीर बिल्कुल मिट्टी की तरह ढीला और शिथिल हो जायेगा। गिर जानें दें शिथिलता की नदी में, बह जायें। शरीर शिथिल हो गया है। छोड़ दें, पकड़े नहीं। जो होना हो, हो। शरीर पर आप अपनी पकड़ न रखें। शरीर शिथिल छोड़ें।

श्वास शांत होती जा रही है। श्वास को भी छोड़ दें। भाव करें, अनुभव करें, श्वास शांत हो रही है। श्वास धीमी और शांत होती जा रही है। धीरे-धीरे जब मालूम पड़ेगा कि श्वास शांत हो रही है, तो ऐसा ही लगेगा कि मिटे जा रहे हैं, मिटे जा रहे हैं, मिटे जा रहे हैं। जैसा चिता पर मिट्टी का एक ढेर रह गया था। भाव करें, श्वास भी शांत हो रही है। श्वास शांत होती जा रही है। श्वास के शांत होते ही शरीर खो जायेगा। पता ही न चलेगा कि शरीर है भी! ऐसा लगेगा शरीर न रहा और हम रह गये हैं। छोड़ दें, श्वास को शांत होने दें। श्वास शांत हो गयी है। श्वास के शांत होने से शरीर और शिथिल हो जायेगा। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। श्वास को शांत जाने दें, वह धीरे-धीरे शांत होते-होते इतनी शांत हो जाती है कि पता नहीं चलता कि कब आई, कब गई! उसकी पहचान ही बन्द हो जाती है। जैसे चिता पर चढ़ गये थे और मिट गये थे, ऐसा ही श्वास को मिट जाने दें, शांत हो जाने दें। श्वास ही हमारा आधार बना है अहंकार का। उसे छोड़ दें ढीला, ढीला और ढीला, फिर वह खो जाये, खो जाये। श्वास शांत हो गई है। शरीर शिथिल हो गया है।

और अब तीसरा कदम तथाता का। अब सब स्वीकार में डूब जायें। जो है, है। उसके साक्षी बने रहें। अब तथाता में ठहर जायें। पक्षी आवाज कर रहे हैं, हम सुन रहे हैं। धूप

गरम है, हम अनुभव कर रहे हैं। रास्ते पर शोरगुल है, हम उसके ज्ञाता हैं। पैर में दर्द हो रहा है, हम जान रहे हैं। शरीर गिर रहा है, हम पहचान रहे हैं, रोक नहीं रहे हैं। हम कर्त्ता नहीं, सिर्फ ज्ञाता हैं। शरीर गिरे तो उसे भी जान रहे हैं। शरीर झुके तो उसे भी जान रहे हैं, आंख से आंसू बहने लगें तो उसे भी जान रहे हैं। जो भी हो रहा है, हो रहा है। हम रोकने वाले नहीं, करने वाले नहीं, सिर्फ जान रहे हैं, जान रहे हैं, जान रहे हैं। सब स्वीकार है। और जो भी जान रहे हैं, उससे कोई इन्कार नहीं है। अब सब स्वीकार में दस मिनट के लिए छोड़ दें अपने को और धीरे-धीरे सब शून्य हो जायेगा, सब मिट जायेगा, सब खो जायेगा।

उसी शून्य में परमात्मा के पदचाप पहली दफे सुनाई पड़ते हैं। उसका दीया जलता हुआ मालूम पड़ता है। उसकी वीणा का संगीत आता हुआ मालूम पड़ता है। छोड़ दें, सब स्वीकार है और हम सारे जगत् से एक होने के करीब पहुंच गए। अब हमें सब स्वीकार है। जो भी चारों तरफ है, इसे जानते रहें, स्वीकार करते रहें। हम सिर्फ द्रष्टा हैं, जान रहे हैं, जान रहे हैं। और धीरे-धीरे भीतर के पर्दे उठ जायेंगे और धीरे-धीरे भीतर के द्वार खुल जायेंगे। ऐसी शांति बरस पड़ेगी, जैसी कभी न जानी हो। ऐसा प्रकाश भीतर छा जायेगा, जो अन-जाना है, कभी पहचाना नहीं। ऐसे आनन्द के झरने भीतर फूट पड़ेंगे, जो रोयें-रोयें को पुलकित कर जायेंगे, नया कर जायेंगे। छोड़ दें। जान रहे हैं, पहचान रहें हैं। द्रष्टा मात्र हैं, कुछ नहीं कर रहे हैं। सब स्वीकार हैं। तथाता के भाव में, सर्व स्वीकृति में डूब जायें। जो है, जैसा है, है और हम राजी हैं। पक्षियों का शोरगुल और सब कुछ जो भी हो रहा है, हम उसके जानने वाले साक्षी के अतिरिक्त और कोई भी नहीं हैं। न हमारा कोई विरोध है, न हमें कुछ बदलना है, न हमारी

कुछ आकांक्षा है । अब दस मिनट के लिए साक्षी भाव से सर्व स्वीकार में डूब जायें ।

और जैसे-जैसे स्वीकृति बढ़ेगी, भीतर झरने फूटने लगेंगे शांति के, आनन्द के । नये-नये अनुभव भीतर प्रगट होने लगेंगे । छोड़ दें...साक्षी भाव में, स्वीकार भाव में लीन हो जायें, अब मैं चुप हो जाता हूं... ।

साक्षी बने रहें...हवायें बह रही हैं, हम जान रहे हैं । पक्षी आवाज कर रहे हैं, हम जान रहे हैं । वृक्षों के पत्तों में शोर-गुल है, हम जान रहे हैं । हम सिर्फ जान रहे हैं और स्वीकार है । हम मात्र ज्ञाता, मात्र साक्षी हैं । देख रहे हैं, जान रहे हैं, पहचान रहे हैं । सब स्वीकृति से धीरे-धीरे भीतर शून्य हो जायेगा । उसी शून्य के मंदिर में प्रभु का साक्षात्कार होता है... । जानते रहें, सुनते रहें, पहचानते रहें । साक्षी मात्र, सर्व स्वीकार से भरें, छोड़ दें, खो जायें, बह जायें—इस होने में, इस अस्तित्व में पूरी तरह लीन हो जायें । हम इसके ही हिस्से हैं । ये हवायें, ये सूरज, यह वृक्ष अलग नहीं हैं । हम सब एक हैं । पूरी तरह छोड़ दें । जानते रहें स्वीकार कर । मन धीरे-धीरे शून्य हो जायेगा । उस शून्य मन में आनन्द के झरने फूट पड़ेंगे, आनन्द की वीणा बजने लगेगी । वहां आनन्द का दीया जल जायेगा । बह जायें, मिट जायें, साक्षी मात्र रह जायें, स्वीकृति में खो जायें...और मन एकदम गहरी शांति में उतर जायेगा । गहरी से गहरी शांति भीतर प्रकट हो जायेगी और रोआं-रोआं आनन्द से पुलकित हो जायेगा । और एक प्रकाश भीतर भर जायेगा, भीतर का सब अंधेरा टूट जायेगा ।

इसी शांति में, इसी प्रकाश में, इसी आनन्द में प्रभु का अनुभव उपलब्ध होता है । चारों तरफ उसकी मौजूदगी प्रतीत होने लगती है । तब पक्षी, पक्षी नहीं रह जाते; पौधे, पौधे

नहीं रह जाते; तब हवायें, हवायें नहीं रह जातीं; तब सूरज की गरमी, सूरज की गरमी नहीं रह जाती है । तब सब उसी परमात्मा का नृत्य हो जाता है । उसी के पदचाप सुनाई पड़ने लगते हैं । सर्व स्वीकार है और साक्षी मात्र रह जायें, जो भी हो रहा है, हम राजी हैं । हमारा कोई विरोध नहीं । जैसे एक बूंद सागर में खो जाती है, ऐसे हम सर्वस्व खो जाने को राजी हैं । जैसे कोई नदी सागर में लीन हो जाती है, ऐसे हम इस विराट के सागर में खोने को राजी हैं । खो जायें...बह जायें ...मिट जायें...सर्व स्वीकार कर लें और फिर देखें, कैसी आनन्द की वीणा बजने लगती है ! देखें, कैसे हजार-हजार दीये परमात्मा के प्रकाश के जल जाते हैं ! खो गए हैं, मिट गए हैं, लीन हो गए हैं, एक हो गए हैं सबके साथ । मात्र गवाह हैं...मन बड़ी शीतलता और आनन्द से भर गया है । मन शांत हो गया है, मन शून्य हो गया है । साक्षी रहें और सब स्वीकार कर लें...आपके आनन्द में वृक्ष भी आनन्दित, हवायें भी आनन्दित, सूरज भी आनन्दित । सिर्फ जानते रहें ...स्वीकार कर लें...इस सब में खो जायें... ।

इसी शांत, आनन्द से भरे हुए चित्त में प्रभु की मौजूदगी का पता चलता है । वह चारों तरफ अनुभव होने लगता है—सूरज की किरणें उसकी किरणें हो जाती हैं; हवाओं के झोंके उसके झोंके हो जाते हैं; वृक्षों पर पक्षियों के गीत उसके गीत हो जाते हैं ; पक्षियों के शोरगुल में उसकी शोरगुल और पुकार मिल जाती है । उन सब रूप में उसकी मौजूदगी को अनुभव करें, चारों तरफ वही मौजूद है—सब में वही मौजूद है । धीरे-धीरे गहरी श्वास लें, प्रत्येक श्वास में वही मौजूद है । वही भीतर जाता है, वही बाहर आता है । आंख बन्द करके भी वही मौजूद था, आंख खुलते भी चारों तरफ वही मौजूद है । जो भीतर जाता है, उसे बाहर भी अनुभव करें । धीरे से

गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास में गहरी शांति, बहुत आनन्द मालूम होगा। जो भी हो रहा है चारों ओर, उसके द्रष्टा मात्र रह गए हैं।

साक्षी होते ही प्राण शांत हो जाते हैं, आत्मा शून्य हो जाती है। साक्षी होते ही वे द्वार खुल जाते हैं, जो प्रभु के मंदिर के हैं। साक्षी रह जायें, बस, साक्षी रह जायें···। मन शांत हो गया है, शांति के फूल खिल गए हैं। मन आनन्दित हो गया है, आनन्द के झरने फूट पड़े हैं। मन आलोकित हो गया है, मन प्रकाश से भर गया है, परमात्मा के बहुत से दीये जल गए हैं···धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें फिर धीरे-धीरे आंख खोलें। अगर आंख न खुले, तो दोनों आंख पर हाथ रख लें फिर धीरे से आंख खोलें। जो लोग लेटे हैं या गिर गए हैं, वे थोड़ी गहरी श्वास लें फिर बहुत धीरे आहिस्ता से उठें। जल्दी न करें, धीरे उठें, झटके से नहीं।

और इस प्रयोग को रात्रि सोते समय करें, फिर सो जायें, ताकि कल सुबह जब यहां आयें तब रात भर की गहरी शांति से और गहरे प्रयोग में उतर सकें। बिस्तर पर इस प्रयोग को करें, ताकि पूरी रात भीतर मन की गहराइयों में ध्यान की धारा बहती रहे और वही शांति, वही आनन्द हमारे भीतर सरकता है।

एक छोटी-सी सूचना ख्याल में रख लें। पिछले तीन दिनों से आपसे कुछ बोलकर बात कर रहा हूं; लेकिन बहुत कुछ है, जो बोलकर नहीं कहा जा सकता है। बहुत कुछ है, जो मौन में ही कहा जा सकता है। अगर कोई भी मौन होने को राजी हो तो भीतर से भी बहुत कुछ दिया जा सकता है, कहा जा सकता है। तो आज दोपहर साढ़े तीन से साढ़े चार मौन प्रवचन होगा। मैं चुपचाप घण्टे भर यहां बैठा रहूंगा। आप भी घण्टे भर आकर चुपचाप बैठे रहेंगे और प्रतीक्षा भर करेंगे

कि कुछ भीतर आ जाये, आ जाये, आ जाये। कुछ भी नहीं करेंगे। आंख बन्द करके लेटना होगा—लेटेंगे; बैठना होगा—बैठेंगे; वृक्ष से टिकना होगा—टिकेंगे, जो जिसकी मौज हो, वैसा चुपचाप आकर साढ़े तीन बजे के पांच मिनट पहले ही यहां पहुंच जायें, ताकि पीछे कोई बाधा न हो। एक घण्टे मैं भी आपके पास मौन बैठा रहूंगा। देखें, जो शब्द से नहीं कहा जा सकता है, हो सकता है, मौन से आप तक पहुंच जाये। उस बीच किसी को भी ऐसा लगे कि मेरे पास आना है, तो वह दो मिनट के लिए मेरे पास आकर बैठ जायेगा। फिर चुपचाप उठकर अपनी जगह चला जायेगा। सुबह की हमारी बैठक पूरी हुई। ●

साधना-शिविर, जूनागढ़, दिनांक १० दिसम्बर १९६९, प्रातः

३. प्रभु की पुकार

मेरे प्रिय आत्मन,

एक मित्र ने पूछा है कि यदि ध्यान से जीवन में शान्ति हो जाती है, तो फिर ध्यान सारे देश में फैल क्यों नहीं जाता है ?

पहली बात तो यह कि बहुत कम लोग हैं पृथ्वी पर जो शान्त होना चाहते हैं। शान्त होना बहुत कठिन है। असल में शांति की आकांक्षा को उत्पन्न करना ही बहुत कठिन है। और कठिनाई शांति में नहीं है। कठिनाई इस बात में है कि जब तक कोई आदमी पूरी तरह अशांत न हो जाये तब तक शांति की आकांक्षा पैदा नहीं होती। पूरी तरह अशांत हुए बिना कोई शांत होने की यात्रा पर नहीं निकलता है। और हम पूरी तरह अशांत नहीं हैं। यदि हम पूरी तरह अशांत हो जायें तो हमें शांत होना ही पड़े। लेकिन हम इतने अधूरे जीते हैं कि शांति तो बहुत दूर, अशांति भी पूरी नहीं हो पाती।

हमारी बीमारी भी इतनी कम है कि हम चिकित्सा की तलाश में भी नहीं निकलते। जब बीमारी बढ़ जाती है तो चिकित्सक की खोज शुरू होती है। लेकिन हम बचपन से ही इस भांति पाले जाते हैं कि हम कुछ भी पूरी तरह नहीं कर पाते। न तो हम क्रोध पूरी तरह कर पाते हैं कि अशांत हो जायें। न ही चिन्ता पूरी तरह कर पाते हैं कि मन व्यथित हो

जाये। न ही द्वेष पूरी तरह कर पाते हैं, न घृणा पूरी तरह कर पाते हैं कि मन में आग लग जाये और नर्क पैदा हो जाये। हम इतने कुनकुने जीते हैं कि कभी आग जल ही नहीं पाती और इसलिए पानी खोजने भी हम नहीं निकलते कि उसे बुझा दें। हमारा कुनकुना जीना ही, ल्यूक-वार्म-लिविंग ही हमारी कठिनाई है।

जब कोई मुझसे पूछता है कि जब शांत होना इतना आसान है तो बहुत लोग शांत क्यों नहीं हो जाते। तो पहली बात तो यह कि वे अभी ठीक से अशांत ही नहीं हुए हैं। उन्हें अशांत होना पड़ेगा। शांत तो आदमी क्षण-भर में हो जाता है, अशांत होने के लिए जन्म-जन्म लेने पड़ते हैं। यह इतने जन्मों से हमारी जो यात्रा है, यह शांति की यात्रा नहीं है, शांति तो क्षण-भर में घटित हो जाती है। यह इतने जन्मों की यात्रा हमारे अशांत होने की यात्रा है जो हम पूरी तरह अशांत हो जाते हैं। जब अशांति की चरम अवस्था आ जाती है, क्लाइ-मेक्स आ जाता है, तब हम लौटना शुरू करते हैं।

बुद्ध एक गांव में गये—और जो आज मुझसे आपने पूछा है एक आदमी ने उनसे भी आकर पूछा। और उस आदमी ने उनसे कहा था कि चालीस वर्षों से निरन्तर आप गांव-गांव घूमते हैं, कितने लोग शांत हुए, कितने लोग मोक्ष गये, कितने लोगों का निर्वाण हो गया ? कुछ गिनती है, कोई हिसाब है ? वह आदमी बड़ा हिसाबी रहा होगा। बुद्ध को उसने मुश्किल में डाल दिया होगा क्योंकि बुद्ध जैसे लोग खाता-बही लेकर नहीं चलते हैं कि हिसाब लगाकर रखें कि कौन शांत हो गया, कौन नहीं शांत हो गया। बुद्ध की कोई दुकान तो नहीं है कि हिसाब रखें। बुद्ध मुश्किल में पड़ गये होंगे। उस आदमी ने कहा, बताइये, चालीस साल से घूम रहे हैं, क्या फायदा घूमने से ? बुद्ध ने कहा, एक काम करो, शाम आ

जाना, तब तक मैं भी हिसाब लगा लूं । और एक छोटा-सा काम है, वह भी तुम कर लाना । फिर मैं तुम्हें उत्तर दे दूंगा । उस आदमी ने कहा, बड़ी खुशी से, क्या काम है, वह मैं कर लाऊंगा । और सांझ आ जाता हूं हिसाब पक्का रखना, मैं जानना ही चाहता हूं कि कितने लोगों को मोक्ष के दर्शन हुए; कितने लोगों ने परमात्मा पा लिया; कितने लोग आनन्द को उपलब्ध हो गये । क्योंकि जब तक मुझे यह पता न लग जाये कि कितने लोग हो गये हैं, तब तक मैं निकल भी नहीं सकता यात्रा पर । क्योंकि इसका पता भी चल जाये कि किसी को हुआ भी या नहीं हुआ ।

बुद्ध ने कहा, यह कागज ले जाओ और गांव में एक-एक आदमी से पूछ आओ, उसकी जिन्दगी की आकांक्षा क्या है, वह चाहता क्या है ? वह आदमी गया । उसने गांव में—एक छोटा सा गांव था , सौ पचास लोगों की छोटी-सी झोंपड़ियां थीं, एक-एक घर में जाकर पूछा । किसी ने कहा, धन की बहुत जरूरत है, और किसी ने कहा, बेटा नहीं है, बेटा चाहिए । और किसी ने कहा—और सब तो ठीक है, लेकिन पत्नी नहीं है, पत्नी चाहिए । किसी ने कहा—और तो ठीक है, लेकिन स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है, बीमारी पकड़े रहती है, इलाज चाहिए, स्वास्थ्य चाहिए । कोई बूढ़ा था, उसने कहा, उम्र चुकने के करीब आ गयी, अगर थोड़ी उम्र मिल जाये और तो बस, और सब ठीक है । सारे गांव में घूम कर सांझ को जब वह लौटने लगा तो रास्ते में डरने लगा कि बुद्ध से क्या कहूंगा जाकर । तब उसे ख्याल आ गया कि शायद बुद्ध ने उसके प्रश्न का उत्तर ही दिया है । गांव-भर में एक आदमी नहीं मिला जिसने कहा, शांति चाहिए; जिसने कहा, परमात्मा चाहिए; जिसने कहा आनन्द चाहिए । बुद्ध के सामने खड़ा हो गया । सुबह बुद्ध मुश्किल में पड़ गये, सांझ

वह आदमी मुश्किल में पड़ गया ।

बुद्ध ने कहा, ले आये हो ? उसने कहा, ले तो आया हूं । बुद्ध ने कहा, कितने लोग शांति चाहते हैं ? उस आदमी ने कहा, एक भी नहीं मिला गांव में । बुद्ध ने कहा, तू चाहता है शांति ? तो रुक जा । उसने कहा, लेकिन अभी तो मैं जवान हूं, अभी शांति लेकर क्या करूंगा ? जब उम्र थोड़ी ढल जाये तो आऊंगा आपके चरणों में । अभी तो वक्त है अभी तो जीने का समय है । तो बुद्ध ने कहा, फिर पूछता है वही सवाल ? कि कितने लोग शांत हो गये ? उसने कहा, अब नहीं पूछता हूं ।

कोई किसी को शांत नहीं करता, लेकिन हम शांत हो सकते हैं । पर अशांत हो गये हों तब । असल में हम अशांत ही नहीं हो पाते, चरम नहीं हो पाती अशांति । बीमारी वहां नहीं पहुंच जाती जहां बीमारी टूट जाती हो । हमने कुछ भी कभी पूरी तरह नहीं किया है । इसलिए मेरी दृष्टि में हिसाब और है । मेरी दृष्टि में हिसाब यह है कि आने वाली जो मनुष्यता होगी उसमें हम एक-एक बच्चे को पूरी तरह क्रोध करना सिखायेंगे । यह नहीं सिखायेंगे बच्चों को कि क्रोध बुरा है । क्योंकि क्रोध बुरा है, इसका सिर्फ एक ही परिणाम होता है कि क्रोध तो नहीं मिटता लेकिन क्रोध अधूरा लटका रह जाता है । वह पूरा होता तो वह मिटता था । जिन्दगी-भर क्रोध, और क्रोध, और क्रोध—क्रोध और पश्चात्ताप भी । आदमी को हमने बड़ी मुश्किल में डाल दिया है । क्रोध भी नहीं मिटता और क्रोध के लिए पश्चात्ताप भी करना पड़ता है । क्रोध एक बीमारी है, पश्चात्ताप दूसरी बीमारी है । क्रोध करो, फिर दुखी होओ, फिर पछताओ, फिर क्रोध करो । फिर दुखी होओ, फिर पछताओ, एक विसियस सर्कल, एक दुष्टचक्र जिन्दगी-भर चलता है । सुबह क्रोध करो, सांझ

पछताओ, रात-भर में फिर तैयारी करो, सुबह फिर क्रोध करो, सांझ फिर पछताओ। रात-भर में फिर तैयारी करो, और ऐसा ही जिन्दगी भर चलता है। कितनी बार आप पछताये ? लेकिन पछताने से क्या बना-बिगड़ा ?

पछताने से सिर्फ एक फायदा होता है कि पछताकर आप फिर पुरानी अवस्था में पहुंच जाते हैं जहां क्रोध के पहले थे कि अब फिर क्रोध कर सकें। पछताना सिर्फ क्रोध को लीपना-पोतना है। रिपेंटेंस, पछतावा, प्रायश्चित्त, वह जो हमारे अहंकार को चोट लग गयी है। मैंने किसी को गाली दे दी है, अब मैं क्रोध से भर गया हूं। मेरे अहंकार को बड़ी चोट लग गयी, क्योंकि मैं अपने को भला आदमी समझता था, जो गाली नहीं दे सकता। जो क्रोध नहीं करता अब क्रोध दे दिया, अब गाली दे दी। अब मैं पछताकर फिर भला आदमी होने की कोशिश करता हूं। पछताकर मैं कहता हूं, भूल हो गयी, नासमझी हो गयी। मुझसे कैसे हो सकता है ? कुछ बेहोशी हो गयी। वह तो कुछ स्थिति ऐसी थी कि मुंह से निकल गया, अन्यथा मुंह से कैसे निकल सकता है। मैं क्षमा भी मांगता हूं, जाकर हाथ भी जोड़ता हूं कि मुझे माफ कर दो ! मैं असल में अपने बिखरे अहंकार को फिर से जुड़ाने की कोशिश कर रहा हूं। जब मैं माफ हो जाऊंगा और पछता लूंगा और दुखी हो लूंगा और एक दिन उपवास करूंगा, पछता लूंगा, दूसरे दिन मैं फिर पुरानी जगह वापस लौट जाऊंगा। अब मैं फिर अच्छा आदमी हो गया। जो न गाली देता है, न क्रोध करता है। अब मैं फिर गाली देने की तैयार कर लिया। मैं गाली दे सकता हूं। अब मैं क्रोध कर सकता हूं। मैं फिर अच्छा आदमी हो गया। अच्छा आदमी हुआ ही इसलिए कि तब फिर गाली देने की सुविधा जुटा सकूं।

हम बच्चों को सिखाते हैं, क्रोध बुरा है, क्रोध पाप है, क्रोध मत

करो। परिणाम यह नहीं होता है कि क्रोध न करते हों। यह तो हो नहीं सकता। सिर्फ क्रोध अधूरा रह जाता है, कभी पूरा नहीं हो पाता। और कभी वे क्रोध की पीड़ा को अनुभव नहीं कर पाते, कभी वे क्रोध की अग्नि से पूरे गुजर नहीं पाते और तब, अक्रोध तक पहुंचने का सवाल नहीं उठता। तब शांति की खोज का सवाल नहीं उठता। अभी जो अशांत ही नहीं हो सका है, वह शांत कैसे हो सकता है। अभी जिसकी इतनी भी पात्रता नहीं है कि अशांत हो जाये, अभी उसकी इतनी पात्रता कैसे होगी कि वह शांत हो जाये। ये बातें उल्टी लगेंगी देखने में। लेकिन मैं आपसे यह कह रहा हूं कि जो ठीक से अशांत हो सकता है वही केवल शांति के मार्ग पर यात्रा करता है। और जो ठीक से क्रोध करके क्रोध को जी लेता है; उसके पूरे जहर को··· उसके कांटे-कांटे में छिद जाता है; उसकी आग की लपटों में जल जाता है; जो क्रोध को पूरी तरह जी लेता है; क्रोध को पूरी तरह पी लेता है—वह फिर दुबारा क्रोध करने में असमर्थ हो जाता है। वह शांति की यात्रा पर निकल जाता है।

मेरी दृष्टि में बच्चों को सिखाया जाना चाहिए ठीक से वे कैसे क्रोध करें, जोर से, ठीक से, पूर्णता से, ताकि क्रोध का पूरा अनुभव उन्हें बता दे कि क्रोध करना अपने को जलाना है। ताकि उन्हें दर्शन हो जाये क्रोध का, क्रोध की पूरी प्रतीति हो जाये, क्रोध के कीड़े उनको दिखायी पड़ जायें और क्रोध की जहरीली लपटें उन्हें चारों तरफ से घेर लें और दर्शन हो जाये कि यह है क्रोध। और जिस आदमी ने एक दफे पूरे क्रोध को देख लिया वह फिर दुबारा क्रोध करने की क्षमता नहीं जुटाता। कौन पागल है जो अपने को आग में डालता हो। लेकिन हम आग में ही नहीं डाल पाये इसलिए निकलने का सवाल नहीं उठता।

हमारे सारे बुनियादी संस्कार गलत हैं और उनकी वजह से हम अशांत ही नहीं हो पाते तो शांत होने की बात कैसे उठेगी। निश्चित ही ध्यान से शांति उपलब्ध हो सकती है लेकिन ध्यान की तरफ वे ही आकर्षित होंगे जो अशांत हो चुके हैं। हम, अशांत ही नहीं हुए हैं पूरी तरह से। वहां नहीं पहुंच गये हैं जहां अशांति हमें जिन्दगी को मिटाती हुई मालूम पड़ती हो। हम उस कगार पर नहीं पहुंच गये हैं जहां आगे खड्ड है और एक कदम उठायेंगे तो अन्तहीन खड्ड में गिर जायेंगे। हम वहां नहीं पहुंच गये हैं। अगर हम वहां पहुंच गये होते तो हम वापस लौटेंगे, क्योंकि कौन गिरेगा उस खड्ड में जहां अन्तहीन गहराइयां हों। और जहां मृत्यु के सिवाय कुछ दिखायी न पड़ रहा हो।

आपने कभी ऐसी अशांति का अनुभव किया है जहां से एक कदम और आगे उठाने से सिवाय मृत्यु के कुछ शेष न रह जाये? अगर नहीं किया है तो अभी आप अशांत ही नहीं हुए हैं। अभी आप अशांति के रास्ते पर आधे ही पहुंचे हैं। और गुरुजन मिल जाते हैं इसी आधे रास्ते पर कहने के लिए, कि चलिए हम आपको शांत होने का मार्ग बताये देते हैं, शांत हो जाइए। तो आपके कदम तो अशांति की तरफ बढ़ते रहते हैं और आप सोचते हैं, चलो रास्ते चलते अगर शांति मिलती हो तो दो हाथ इस पर भी मार लें। चलते रहते हैं अशांति की तरफ क्योंकि अभी अशांति का रस ही नहीं ले पाये कि उससे मुक्त हो सकें।

असल में जिस चीज से भी मुक्त होना हो उसके पूरे रस का अनुभव जरूरी है। जब बुराई से भी मुक्त होना हो तो बुराई की गहराइयों में उतरना जरूरी है। असल में पापी हुए बिना न कभी कोई महात्मा हुआ है, न हो सकता है। असल में जिसे आकाश की ऊंचाइयां छूनी हो, उसे पाताल की

गहराइयां भी छूनी होती हैं। देखें हैं दरख्त, जो आकाश की तरफ उठते हैं और चांद-तारों को छूते हुए मालूम पड़ने लगते हैं। वह उनकी जड़ें नीचे पाताल में उतर जाती हैं, तभी वे ऊपर उठ पाते हैं। जिस दरख्त को आकाश छूना हो, उस दरख्त को पाताल भी छूना पड़ता है। जितनी जड़ नीचे गहरी जाती है उतना दरख्त ऊपर उठता चला जाता है।

हम कुछ ऐसे लोग हैं कि जड़ें ही पूरी गहरी नहीं जा पातीं, आकाश की तरफ उठने का सवाल कहां है? और ध्यान रहे, जितनी नीचे गहराई होगी उतनी ही ऊपर ऊंचाई हो सकती है, अन्यथा कोई उपाय नहीं है। तो हमें जो संस्कृति मिली है अधूरी, इम्पोटेंट, नपुंसक, जो कुछ भी करना नहीं सिखाती; जो ठीक अर्थों में क्रोध भी करना नहीं सिखाती—अधूरे, अधजले, न इस पार, न उस पार, आदमी अटका रह जाता है। मैं तो कहता हूं, क्रोध करना तो ठीक से करना, एक ही बार कर लेना ताकि बार-बार करने की जरूरत न रहे। और चिंतित होना हो तो ठीक से चिंतित हो लेना, और द्वेष करना हो, दुश्मनी करनी हो तो ठीक से ही कर लेना क्योंकि ठीक से कर लेना ही बाहर हो जाने का रास्ता है। लेकिन कुछ भी हमने ठीक से नहीं किया। इसलिए मैं कहता हूं, अशांत ही हम नहीं हैं। हां, जो अशांत हैं वे शांत हो सकते हैं।

इसलिए मुझे लगता है कि पश्चिम के मुल्कों में शांति की लहरें हर वर्ष बढ़ती चली जायेंगी। क्योंकि पश्चिम के लोग बड़े खुले दिल से अशांत हुए हैं। आज अमरीका में ध्यान के लिए जैसी अभीप्सा है, जैसी प्यास है, वैसी हमारे भीतर नहीं है। आज योरोप में, योरोप के बुद्धिमान वर्ग में जिस भांति योग की खोज है, समाधि की खोज है वैसी हमारे बुद्धिमान वर्ग में नहीं है। उसका कारण है। उन्होंने अगर अशांत भी

होना चाहा है तो ठीक से वे अशांत हुए हैं। अगर उन्होंने भौतिकवादी होना चाहा है तो फिर उन्होंने कुछ बकवास नहीं सुनी, ठीक से भौतिकवादी हो गये हैं। और जब कोई आदमी ठीक से भौतिकवादी हो जाता है तो वह सीमा आ जाती है जहां से अध्यात्म शुरू होता है। लेकिन ठीक से कोई भौतिक-वादी ही नहीं हो पाता है। हमारे यहां इसलिए अध्यात्मवादी होना असम्भव है। पहले कम-से-कम भौतिकवादी तो कोई हो जाये। वह भी नहीं हम हो पाते। तो हम अधूरे मकान बनाते हैं।

मैंने सुना है, एक फकीर के पास कोई पूछने गया है कि तुम कैसे उपलब्ध हो गये परमात्मा को? तो उस फकीर ने कहा—मैंने परमात्मा की फिक्र ही न की। मैंने संसार की ही पूरी फिक्र की। लेकिन जब मैं संसार में गहरा उतरा, और गहरा, और गहरा उतरा तो सीमा आ गयी। और सीमा पर मुश्किल हो गयी, फिर पीछे लौटना जरूरी हो गया।

उस आदमी ने कहा, मैं समझा नहीं। तो उसने कहा, आओ मैं तुम्हें पास के एक खेत पर ले चलता हूं। जैसा उस खेत का मालिक है, ऐसे दुनिया के लोग हैं। वह उसे खेत पर ले गया। उस खेत का मालिक बड़ा अद्भुत होगा, ठीक आप जैसा होगा, हम जैसा होगा। उस खेत के मालिक ने खेत में आठ गड्ढे खोदे थे। कुआं बनाने के लिए पहले एक गड्ढा खोदा, आधा खोदा, फिर छोड़ दिया; सोचा अब तक पानी नहीं आया, दूसरा गड्ढा खोदूं। फिर आधा खोदा, सोचा इसमें भी पानी नहीं आता; फिर तीसरा गड्ढा खोदा। उसने आठ गड्ढे खोदे थे, पूरा खेत खराब हो गया आठ गड्ढों में, लेकिन अभी कुआं नहीं खुदा है। फकीर ने कहा, देखते हो उस खेत के मालिक को? यह कभी कुआं न खोद पायेगा। क्योंकि यह पूरा खोदता ही नहीं है। खोदे तो पानी आ जाये,

मिट्टी खत्म हो जाये। लेकिन अधूरा खोदता है, फिर दूसरा खोदना शुरू कर देता है, फिर तीसरा खोदना शुरू कर देता है। एक ही कुआं खोदने से काम हो सकता था, आठ से भी काम नहीं हुआ। क्योंकि कुआं तो आया नहीं, यह तो बीच से ही लौट आया था। और जितनी खुदायी इसने की उतनी खुदायी में एक कुआं कभी का खुद गया होता। खुदायी तो इसने काफी की। लेकिन अलग-अलग जगह की है, एक ही गड्ढे पर नहीं की।

हम भी उस खेत के मालिक जैसे लोग हैं। हम जिन्दगी में जाते हैं, लेकिन कहीं भी हम पूरे नहीं गये। किसी भी आयाम में, किसी भी दिशा में हमारी गति पूरी नहीं है। अगर एक आदमी धन ही कमा ले पूरी तरह से तो धन से मुक्त हो जायेगा। लेकिन इधर धन कमाता है, उधर किताब में पढ़ता है, धन बिल्कुल पाप है। इधर रोज किताब भी पढ़ता है, गुरु के पास भी जाता है जो धन को गाली दे रहा है और दिन भर दुकान में धन कमाता है और सांझ गुरु के चरणों में बैठ-कर धन की निन्दा सुनता है। ऐसे दोहरे गड्ढे खोदता है, जो कभी पूरे नहीं हो पाते। क्योंकि उल्टे गड्ढे कैसे पूरे हो सकते हैं। इधर स्त्रियों के पीछे भागता रहता है और उधर किताबों में ब्रह्मचर्य के उपदेश पढ़ता रहता है। वह उल्टे गड्ढे खोदता है, वह कभी अर्थ नहीं लाता। तो दोनों काम साथ चलते हैं। दोनों काम ही साथ चलते रहते हैं।

यह जो हमने अधूरा-अधूरा आदमी पैदा किया है, इसकी वजह से कठिनाई पैदा हो गयी है। इसलिए हम पुरानी संस्कृतियों से दबे हुए लोग हैं। धार्मिक भी नहीं हो पा रहे हैं। अधार्मिक होने की हिम्मत ही खो दी है, धार्मिक होना तो बहुत बड़ी चीज है। मेरी बात आप समझ रहे हैं? अधार्मिक होने की हिम्मत तक हमारी नहीं है। झूठ बोलने तक की

हिम्मत नहीं है, सच बोलना तो बहुत दूर की बात है। झूठ बोलने में भी हिम्मत की जरूरत पड़ती है। झूठ भी हर कोई नहीं बोल देता। झूठ बोलने तक में कमजोर हो गये हैं, और सच बोलने के उपाय खोज रहे हैं। सच बोलना तो बहुत हिम्मत की बात है। उसका तो मुकाबला ही नहीं है। वह तो पूरी हिम्मत आये तभी कोई सच बोल सकता है। लेकिन जो झूठ बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाते, उनको हम कहते हैं कि ये बड़े सच बोलने वाले हैं। जो चोरी करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते वह अचोर बन गये हैं। और जो हिंसा करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते वे अहिंसा के पुजारी हैं। सब हमने विकृत और उल्टा कर लिया है। और अधूरा करके उल्टा कर लिया है।

मेरी बात इसलिए बड़ी अजीब मालूम पड़ती है, क्योंकि मैं यह कहता हूं कि अगर धार्मिक होना हो तो पहले अधार्मिक होने की पूरी हिम्मत से यात्रा करो। रुकना मत, किसी के बुलाये मत रुकना, किसी के चिल्लाये मत रुकना। कहना चाहिए, ठहरो, पहले इस यात्रा को हम पूरा कर ही लें। इसे हम जानेंगे कि यह अधर्म का आकर्षण क्या है। तुम कहते हो झूठ बुरा है, हम भी देख लें कि झूठ बुरा है या नहीं। और तुम कहते हो कि धन बुरा है, तो हम भी देख लें कि धन बुरा है या नहीं। निश्चित ही एक जगह आती है जहां धन मिट्टी होता है। लेकिन उसके लिए कभी यह जगह नहीं आती जो धन की यात्रा में गया ही नहीं। जो पहले से ही रोक कर अपने को, साधकर संयम करके खड़ा हो गया हो। उस संयमी आदमी की बड़ी मुश्किल है।

संयमी आदमी से ज्यादा फजीहत किसी की भी नहीं है। क्योंकि उसका मन होता है उस तरफ जाने को तो विचार होते हैं एक तरफ जाने को। वह ऐसा आदमी है, ऐसी बैल-

गाड़ी है जिसमें दोनों तरफ बैल जोत दिये हों और बैलगाड़ी को दोनों तरफ खींच रहे हैं। वह बैलगाड़ी कभी कहीं जा नहीं पाती। वह कभी • फीट उधर जाती है, जरा बैल ताकतवर हो गये, दूसरे बैल सुस्ताने लगे, कभी दो फीट इधर आती है। वह बैल थक गये और इन बैलों ने खींच लिया। जिन्दगी-भर बस बैलगाड़ी इसी तरह हमारी होती रहती है। इधर थोड़ा अधर्म करते हैं, फिर मन डर जाता है, थोड़ा धर्म कर लेते हैं, फिर मन ऊब जाता है फिर थोड़ा अधर्म कर लेते हैं, बस ऐसा चलता रहता है। धर्म और अधर्म के बीच हम कभी भी एक यात्रा पर नहीं निकले।

मेरी अपनी समझ यह है कि अधर्म का अनुभव ही धर्म में ले जाता है, अशांति का अनुभव शांति में ले जाता है। हिंसा का अनुभव अहिंसा में ले जाता है। और भौतिकता का अनुभव अध्यात्म में ले जाता है। भोग का अनुभव योग का आधार बनता है। ये बातें उल्टी दिखायी पड़ती हैं। ये उल्टी नहीं हैं। यह जिन्दगी का नियम है। इसलिए मैं इस प्रश्न के संदर्भ में जीवन का दूसरा नियम भी आपसे कह दूं। जीवन के गणित का दूसरा नियम यह है कि जो भी करना हो, पूरा करना। अधूरा करने के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है। अधूरा करने के अतिरिक्त और कोई बुराई नहीं है। बुराई भी करनी हो तो पूरी करनी है। एक और बहुत मजे की बात इससे निकलती है और वह यह कि बुराई आप पूरी कर सकते हैं, भलाई आप कभी पूरी नहीं कर सकते हैं। इसलिए बुराई से मुक्त हो जायेंगे, भलाई से कभी मुक्त न होंगे। यह कभी ख्याल में न आया होगा कि बुराई बहुत छोटी चीज है, उसका अन्त बहुत जल्दी आ जाता है। लेकिन भलाई बहुत अनन्त है, उसका अन्त आता ही नहीं। इसलिए संसार से कोई ऊपर उठ सकता है, भौतिकवाद से ऊपर उठ

सकता है, लेकिन धर्म और अध्यात्म के ऊपर कभी भी नहीं उठ सकता है। उसमें फिर प्रवेश होता है, अन्त आता ही नहीं। परमात्मा में सिर्फ प्रवेश होता है, अन्त कभी नहीं आता। ऐसा कभी नहीं होता कि एक आदमी यह कह दे कि अब ठीक है, परमात्मा को भी पूरा जान लिया, अब। अब आगे। नहीं, ऐसा कभी नहीं होता। असल में बुराई वह है जिसका अन्त आ जाता है, जिसकी बड़ी छोटी-सी सीमा है।

इसे थोड़ा सोचें। अगर आप एक आदमी से दुश्मनी करें और पूरी दुश्मनी करें तो ज्यादा से ज्यादा अन्त क्या हो सकता है, उस आदमी को मार डालें। और क्या हो सकता है? दुश्मनी अगर पूरी ही करें कोई मुझसे और मुझे मार डाले, यही कर सकता है न। आखिरी और क्या कर सकता है? लेकिन अगर कोई मुझसे मित्रता करे तो बड़ी लम्बी यात्रा है। उसका अन्त कभी भी नहीं आयेगा। वह कुछ भी करता चला जाये, कुछ भी करता चला जाये लेकिन अंतिम मित्रता का क्या मतलब हो सकता है। मित्रता का कोई अंतिम मतलब नहीं होता है। कितना ही करो, फिर करने को बाक़ी रह जायेगा। कितना ही करो, फिर भी शेष, फिर शेष रह जाता है। शत्रुता का अन्त आ जाता है, मित्रता का कोई अन्त नहीं है। अशांत आप हो जायें, फिर कितनी देर अशांत रह सकते हैं? अगर एक आदमी को हम कहें, तुम अशांत रहो, कितनी देर अशांत रह सकते हो? तो आप पायेंगे, घड़ी-आधा घड़ी में शिथिल हो जायेगा। करेगा क्या? क्योंकि अशांति इतनी शक्ति व्यय करवाती है कि आप बहुत देर अशांत नहीं रह सकते। न बहुत देर क्रोधित रह सकते हैं, लेकिन शांत होने का कोई अन्त है? आप कितना ही रहें, उसका कोई अन्त है? वह अन्तहीन है।

अशांति का अन्त आ जायेगा, शांति का कोई अन्त नहीं

आयेगा। शांत कितना ही रह सकते हैं, अशांत कितना ही नहीं रह सकते। क्योंकि अशांति एक तनाव है, तनाव में श्रम है, श्रम से शक्ति का व्यय है। शांति तनाव नहीं है, विश्राम है। शांति में कोई शक्ति का व्यय नहीं है। कोई तनाव नहीं है, कितना ही शांत रह सकता है। प्रेम का कोई अन्त नहीं है, घृणा का अन्त है। लेकिन हम घृणा के ही अन्त पर नहीं पहुंचे जिसका अन्त है; हम अशांति के ही अन्त पर नहीं पहुंचे जिसकी सीमा है। तो हम शांति की खोज में नहीं निकल पायेंगे।

तो मैं आपसे नहीं कहता हूं कि शांति की खोज पर निकल जाइए, मैं तो कहता हूं, ठीक से अशांत ही हो जाइए। मन्द-मन्द मत चलिए, धीमे-धीमे मत चलिए, ठीक से हो जाइए। अशांति ही आपको धक्का देगी। कोई गुरु धक्का नहीं दे सकता। अशांति ही आपको धक्का दे देगी। वह अंतिम धक्का जो शांति की यात्रा पर ले जा सकती है। ध्यान तो शांति ला सकता है। लेकिन शांति की तरफ वे आते हैं जो अशांत हो गये हैं। अगर आप अशांत हो गये हैं तो अब कोई उपाय न रहेगा, आपको ध्यान की तरफ जाना ही पड़ेगा। किसी भी द्वार से आप ध्यान को यात्रा करेंगे ही। बचाव नहीं है कोई।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि ईश्वर को खोया नहीं, सिर्फ भूल गये। और आप कहते हैं कि ईश्वर से ही हम आये हैं और ईश्वर में ही चले जायेंगे, और फिर यह भी कहते हैं कि ईश्वर और हम एक हैं। ये बातें तो बड़ी उल्टी हैं। अगर हम एक ही हैं तो ईश्वर से आना कैसा और जाना कैसा? ये तो बातें बड़ी उल्टी मालूम पड़ती हैं।

सागर में लहर उठती है और गिरती है। उठती है तब भी सागर से दूर नहीं होती और गिरती है तब भी दूर नहीं

होती, फिर भी उठती है और गिरती है । सागर की लहर सागर के साथ एक ही है, सागर से जरा भी अलग नहीं है। सागर की लहर को आप सागर से अलग करना भी चाहेंगे तो नहीं कर सकेंगे । यह बड़े मजे की बात है, सागर तो बिना लहर के हो सकता है लेकिन लहर बिना सागर के नहीं हो सकती। सागर को कोई अड़चन नहीं है कि लहर के बिना न हो सके, लहर के बिना हो सकता है; लेकिन लहर, सागर के बिना नहीं हो सकती ।

इसलिए तीन बातें ख्याल रखने जैसी हैं—पहली बात, लहर सागर के बिना नहीं हो सकती । उसमें सागर मूल है और लहर मूल नहीं है। लहर आती है और जाती है, सागर है । सागर न आता है, न जाता है। लहर कभी जन्मती है, कभी मरती है । सागर न जन्मता है, न मरता है । सागर के लिए हम अतीत या भविष्य का प्रयोग नहीं कर सकते हैं, सागर के लिए सदा वर्तमान का ही, प्रजेंट टेंस का ही उपयोग करना पड़ेगा । हम ऐसा नहीं कह सकते कि सागर था। हम ऐसा नहीं कह सकते कि सागर होगा । हम ऐसा ही कह सकते हैं, सागर है। क्योंकि था उसको कहते हैं जो कि नहीं हो जाये । होगा उसको कह सकते हैं जो अभी न हो । हां, लहर को कह सकते हैं—थी, है, होगी; सागर को नहीं कह सकते । सागर सदा है । सागर सदा वर्तमान है ।

ध्यान रहे, अतीत, भविष्य और वर्तमान में वर्तमान परमात्मा का काल है; भविष्य और अतीत हमारे काल हैं। वर्तमान हमारा काल नहीं है । वर्तमान परमात्मा का है, परमात्मा हमेशा वर्तमान में है। ईश्वर था, ऐसा कहने का कोई भी अर्थ नहीं होता । ईश्वर है । ईश्वर होगा, इसका भी कोई अर्थ नहीं होता । ईश्वर है। सागर से समझने की थोड़ी कोशिश करें । सागर से लहर एक है । लेकिन फिर भी

उठती है और गिरती है। तो परमात्मा से हम एक हैं, और आते हैं जाते हैं । कठिनाई क्या है ? अड़चन क्या है ? क्यों नहीं आ सकते और जा सकते ? क्यों नहीं उठ सकते और गिर सकते। लेकिन आने-जाने से हमें ऐसा ख्याल आता है कि आने का मतलब है, अलग हो गये । लहर जब उठती है तब अलग है सागर । और लहर नहीं उठती है तब एक है । जब उठती है तब अलग है ? नहीं, जब लहर उठती है तब भी एक है। तब भी अलग नहीं है । हम जब आते हैं तब उसका मतलब इतना ही है कि लहर की भांति उठते हैं चेतना के सागर में । वह जो कॉन्शसनेस का सागर है, उसमें हम उठते हैं और गिरते हैं । अलग लेकिन हम नहीं होते । लेकिन उठने और गिरने में अलग होने का भ्रम पैदा हो सकता है । अगर लहर को भी चेतना हो तो लहर उसी वक्त सोच सकती है कि मैं हूं क्योंकि लहर अपने भीतर तो देख न सकेगी, अपने बाहर देखेगी और लहरें दिखायी देंगी, सागर तो दिखायी न पड़ेगा। यह भी ध्यान रखें । अगर कोई लहर देख सकेगी तो उसे सागर दिखायी कभी नहीं पड़ेगा, लहरें दिखायी पड़ेंगी । क्योंकि छाती पर सागर के लहरें ही होती हैं । सागर तो नहीं होता । और जब एक लहर उठेगी तो आसपास लहरें उठेंगी क्योंकि कोई लहर अकेली नहीं उठ सकती ।

यह भी ध्यान में रख लेना कि कोई लहर अकेली नहीं उठ सकती। मैं अकेला पैदा नहीं हो सकता हूं, और न आप अकेले पैदा हो सकते हैं । करोड़ों-करोड़ों लहर के बीच में हमारा होना है । आपके पिता थे इसलिए आप हैं, उनके भी पिता थे इसलिए वे थे । उनके भी पिता थे, उनके भी पिता थे । लम्बी कहानी है । जिसमें अरबों-खरबों का हाथ है, एक आदमी के होने में । अरबों-खरबों लहरों ने धक्के देकर आपकी लहर को उठाया है । तो आप कभी ऐसा मत सोच लेना

कि अकेले आप हो सकते हैं। आपका होने का कोई अर्थ ही नहीं है।

जब एक लहर पैदा होती है तब लहर अकेली कभी पैदा नहीं होती। करोड़ों-करोड़ों लहर के जाल में पैदा होती है। उसे चारों तरफ लहरें दिखायी पड़ती हैं, सागर दिखायी नहीं पड़ता। अगर लहर देख सके तो उसे सागर कभी दिखायी नहीं पड़ेगा। उसे लहरें दिखायी पड़ेंगी।

हमको भी परमात्मा नहीं दिखायी पड़ता, प्राणी दिखायी पड़ते हैं। वे लहरें हैं जो हमारे चारों तरफ हैं। मनुष्यों की, पशुओं की, पक्षियों की चारों तरफ लहरें दिखायी पड़ती हैं, परमात्मा हमें भी दिखायी नहीं पड़ता है।

अब यहां हम इतने लोग बैठे हुए हैं, इतनी लहरें हैं और हम चारों तरफ देखेंगे, परमात्मा कहां दिखायी पड़ेगा, लहरें ही लहरें दिखायी पड़ेंगी। कोई लहरें उठती हुई होंगी, बच्चे होंगे, जवान होंगे। कुछ लहरें गिरती होंगी, बूढ़े हो गये, विदा हो गये। कुछ लहरें उठ चुकी होंगी, कुछ जाने के करीब आ गयी होंगी, कुछ उठ रही होंगी। हमारे चारों तरफ हम देखेंगे तो परमात्मा कहां दिखायी पड़ेगा, लहरें दिखायी पड़ेंगी। सघन लहरों का जाल है।

तो अगर कोई लहर होश से भर जाये तो पहली तो बात यह है कि उसे सागर दिखायी नहीं पड़ेगा। हमें भी परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता है।

दूसरी बात यह है कि उसे दूसरी लहरें दिखायी पड़ेंगी जिनसे वह भिन्न मालूम पड़ेगी कि मैं अलग हूं। स्वाभाविक है। एक लहर उठी है सागर पर, वह देखती है, पड़ौस की लहर तो गिर रही है, मिट रही है और मैं तो अभी उठ रही हूं तो हम दोनों एक कैसे हो सकते हैं?

एक आदमी पड़ोस में मेरे मर गया है मैं उससे एक कैसे

हो सकता हूं। अगर एक होता तो मैं भी मर जाता। और अगर एक होता तो उसको भी जिन्दा रहना चाहिए था। हम एक नहीं हो सकते, क्योंकि पडोसी था, मर गया और मैं जिन्दा हूं। हम एक नहीं हो सकते। एक लहर गिर रही है, एक छोटी है और एक बड़ी है, एक बूढ़ी है। लहरों को दिखायी पड़ता है लहरें अलग-अलग हैं। मैं अलग हूं, चारों तरफ की लहरें अलग हैं।

ऐसा ही हमें भी दिखायी पड़ता है कि मैं अलग हूं। चारों तरफ के जीवन में प्राण के स्रोत—मूल स्रोत से टूटे हुए टुकड़े अलग-अलग हैं। और बाहर देखने को बहुत कुछ है, लहर भीतर क्यों देखें। अगर लहर भीतर देखे तो शायद सागर मिल जाये क्योंकि भीतर उतरने पर कोई लहरें तो नहीं मिलेंगी। अगर एक लहर अपने भीतर उतर सके तो सागर मिलेगा उसे, लहरें नहीं मिलेंगी क्योंकि नीचे सागर है। इसलिए जब कोई अपने भीतर उतरता है तो परमात्मा का अनुभव कर पाता है। अपने बाहर तो लहरें-लहरें ही दिखायी पड़ती हैं।

ध्यान जो है, वह भीतर उतरने की कला है जिसमें हम बाहर की लहरों की फिक्र छोड़ देते हैं और उसी लहर में उतर जाते हैं जो मैं हूं। और जैसे-जैसे हम भीतर उतरते हैं वैसे-वैसे पता चलता है कि लहर नहीं है, सागर है। और जितने भीतर जाते हैं, पता चलता है, लहर थी ही नहीं, सागर ही था, सागर ही है, सागर ही होगा। लहर नहीं है। जो व्यक्ति अपने भीतर जाता है उसे सागर का पता चल जाता है, परमात्मा का पता चल जाता है।

उन मित्र ने पूछा है, लेकिन हम जानें ही क्यों? अगर उसी से आये हैं और उसी में जाना है तो ठीक है, आ गये और लौट जायेंगे। अब हम इस झंझट में क्यों पड़ें कि

हम जानें ?

मत पड़ें । कोई कहने नहीं आता कि आप पड़ें । लेकिन पड़े हुए हैं । असल में जीवित होते के साथ ही, जीवन क्या है, वह प्रश्न भी हमारे भीतर उठ आता है । जीवित होने का यह हिस्सा है कि हम यह भी जानना चाहते हैं कि जीवन क्या है ? कोई नहीं कहता कि आप जानने जायें, लेकिन ऐसा दुनिया में एक आदमी नहीं मिलेगा जो जानने को आतुर नहीं है । अगर ऐसा आदमी मिल जाये जो जानने को आतुर नहीं है तो बड़ा चमत्कार है । मिल नहीं सकता ऐसा आदमी । छोटे से बच्चे भी जैसे ही बोलना शुरू करते हैं, जानने की यात्रा शुरू कर देते हैं । वे कहते हैं—यह वृक्ष कहां से आया ? प्रश्न उनके उठने शुरू हो जाते हैं । यह पृथ्वी किसने बनायी ? यह चांद को रोज रात कौन जला देता है ? यह सूरज सुबह निकल आता है, रात कहां चला जाता है ? छोटे बच्चे भी पूछते हैं ।

जिन्दगी पूछती है, जानना चाहती है क्योंकि जान लें हम पूरी तरह तो ही पूरी तरह जी सकते हैं । वह जीने की ही खोज का हिस्सा है कि हम जान लें ताकि हम पूरे जी सकें । अगर मुझे पूरा पता चल जाये कि मैं लहर नहीं हूं तो मेरे जीने का मतलब ही, अर्थ ही बदल जायेगा । क्योंकि तब मुझे कोई डर न रहेगा मिटने का क्योंकि सागर कभी नहीं मिटता । मौत से मुझे कोई डरवा न सकेगा क्योंकि मैं हंसूंगा कहूंगा कि ठीक है, मिटा दो लहर को, क्योंकि मैं तो लहर हूं ही नहीं । तुम जिसे मिटाओगे, वह मैं नहीं हूं । और तुम मिटा भी न पाओगे और मैं रहूंगा वहीं के वहीं, जहां मैं था । अगर मुझे पता चल जाये कि मैं सागर हूं और लहर नहीं, तो लहर की चिन्ताएं विदा हो जायेंगी । लहर बड़ी चिन्ता में पड़ी है । सबसे बड़ी चिन्ता तो यह है कि वह विदा हो जायेगी, समाप्त

हो जायेगी, नष्ट हो जायेगी ।

हर आदमी मरने से डरा हुआ है । हम डरे हुए हैं कि मर न जायें । यह मरने का डर इसीलिए है कि हमें पता नहीं है कि नीचे कुछ है जो मर ही नहीं सकता । उसका पता चल जाये तो यह भय विदा हो जाये ।

सिकन्दर हिन्दुस्तान से लौटता था तो एक फकीर को पकड़ कर ले जाना चाहता था । उसके मित्रों ने कहा था उससे कि जब हिन्दुस्तान से लौटो तो एक संन्यासी को ले आना । उसने खबर की गांव में कि कोई संन्यासी हो तो मैं ले आऊं । लेकिन गांव के लोगों ने कहा, बहुत मुश्किल है । संन्यासी तो है, लेकिन संन्यासी को ले जाना बहुत मुश्किल है । सिकन्दर ने कहा, तुम इसकी फिक्र मत करो । मेरे पास नंगी तलवारें हैं । हम किसी को भी ले जा सकते हैं । गांव के लोगों ने कहा, फिर आप संन्यासियों को जानते नहीं । क्योंकि नंगी तलवार देखकर संन्यासी हंसेंगे और कुछ भी न होगा । सिकन्दर ने कहा, तुम फिक्र ही मत करो । तुम मुझे बता दो कि वह कहां है । उसने सिपाही भेजे नंगी तलवारें लेकर और कहा कि उसे पकड़ लाओ । वे सिपाही गये और उन्होंने कहा कि महान सिकन्दर की आज्ञा है कि आप हमारे साथ चलें । संन्यासी बहुत हंसने लगा । उसने कहा, जो खुद ही को महान कहता हो उससे ज्यादा नासमझ और कौन हो सकता है, उससे ज्यादा पागल और कौन हो सकता है । कौन कहता है, अपने को महान ? वे सिपाही एक क्षण तो डर गये, क्योंकि उनके महान सिकन्दर को कोई ऐसा कहेगा एक नंगा फकीर नदी के किनारे खड़ा हुआ, एक बूढ़ा आदमी । उन सिपाहियों ने कहा, तुम क्या कह रहे हो ? गर्दन अलग कर देंगे अगर तुमने इस तरह की बात की । उस फकीर ने कहा गर्दन मैं बहुत पहले अलग कर चुका हूं । अलग करने को कुछ बचा नहीं है । हमने

वह काम दूसरों के लिए छोड़ा ही है। तुम अपने सिकन्दर को बुला लाओ। हम तुम्हारे मालिक से ही बात करेंगे।

वे सिपाही सिकन्दर से कहे कि वह बहुत अजीब आदमी है। अपना वश उस पर न चलेगा, क्योंकि ज्यादा-से-ज्यादा हम मार सकते हैं, इतना हमारा वश है और वह आदमी मरने से जरा भी नहीं डरता। सिकन्दर ने कहा फिर भी मैं चलना चाहूंगा। सिकन्दर गया और उस आदमी के सामने तलवार उसकी गर्दन पर रख दी और कहा कि चलते हो कि गर्दन अलग कर दूं? फकीर ने कहा, गर्दन अलग कर दो। और उस फकीर ने कहा कि बड़ा मजा आयेगा, तुम भी गर्दन को गिरते देखोगे कि गिर गयी और मैं भी देखूंगा कि गिर गयी। सिकन्दर ने कहा, तुम भी देखोगे! उस फकीर ने कहा, मैं भी देखूंगा। क्योंकि यह गर्दन मैं नहीं हूं। यह जब से जान गया तब से बात ही खत्म हो गयी। मुझे कोई सिकन्दर डरा नहीं सकता। तलवार भीतर रख ले। उस फकीर ने कहा, तलवार म्यान के भीतर रख, बेकार हाथ थक जायेगा। और सिकन्दर पहला मौका था यह कि किसी के डर में तलवार भीतर रख लिया। क्योंकि यह आदमी बेकार था, इसके सामने तलवार निकालना खुद ही मूढ़ता मालूम पड़ने लगी। उसने कहा, तू गर्दन काट ही दे, जरा मजा आ जायेगा। गिर जायेगी तो बहुत अच्छा होगा।

लहर अपने को जान लेगी कि सागर है तो सब बदल जायेगा। सारी जिन्दगी बदल जायेगी। जिन्दगी के रहने का मजा ही और हो जायेगा क्योंकि तब हम लहर की तरह नहीं, सागर की तरह रहेंगे। तब हम आदमी की तरह नहीं, परमात्मा की तरह रहेंगे। और परमात्मा की तरह रहने का मजा। तब हम पूरे ऐश्वर्य में रहेंगे। ऐश्वर्य का मतलब? ऐश्वर्य का मतलब बड़ा मकान नहीं होगा। ऐश्वर्य का मतलब

बड़ा मकान, कितना ही बड़ा मकान हो फिर भी छोटा ही होगा। और धन कितना ही ज्यादा हो फिर भी थोड़ा ही होगा। असल में जो गिना जा सकेगा वह थोड़ा ही होगा।

ऐश्वर्य का मतलब है, सारा जगत जिसका मकान हो गया। सारे चांद-तारे जिसके घर पर रोशनी देने लगे, और हवाएं जिसकी बगिया की सेवा करने लगीं, जो सारे जीवन का मालिक हो गया। मालिक इसीलिए कि उसका मालिक के साथ ऐक्य का अनुभव हो गया। ख्याल है आपको, ईश्वर शब्द ऐश्वर्य से बना हुआ है। ईश्वर शब्द और ऐश्वर्य एक ही सत्य के रूपान्तरण हैं। ईश्वर का मतलब है मालिक, सब ऐश्वर्य जिसका है; सारा जगत् जिसका है।

संन्यासी वह नहीं है जिसने एक घर छोड़ दिया, संन्यासी वह है जिसके सारे घर अपने हो गये। संन्यासी वह नहीं है, जिसने कि एक बेटा-बेटी, एक मां-बाप छोड़ दिया। जिसका सब अपना परिवार हो गया।

यह जो अनुभव है ऐश्वर्य का, यह सबको अपना ही हो जाने का है—लेकिन यह कैसे होगा? यह होगा लहर भीतर उतरे और जान ले। बच नहीं सकते हैं परमात्मा की खोज है। खोज करनी ही पड़ेगी। गलत भी कर सकते हैं, ठीक भी कर सकते है यह दूसरी बात है। एक आदमी धन खोजकर सोचता है कि वह ईश्वर को पा लेगा। वह गलत खोज है। क्योंकि धन कितना ही खोज लो, कितना ही खोज लो फिर भी गिना जा सकेगा। और जो गिना जा सकेगा वह कभी असीम नहीं हो सकेगा। और धन कितना ही इकट्ठा कर लो, वह छीना जा सकेगा क्योंकि जो छीना गया है वह छीना जा सकता है। आखिर मैं भी छीन कर ही इकट्ठा करूंगा। तो जो मैंने छीना है, वह मुझसे छीना जा सकता है, छिनेगा ही।

धन खोजकर आदमी ईश्वर को ही खोज रहा है, मैं यह कह रहा हूं—गलत ढंग से खोज रहा है। धन खोजकर भी वह ऐश्वर्य की खोज में गया है लेकिन गलत चला गया है। लहर भीतर की तरफ नहीं गयी है, बाहर की लहर पर कब्जा करने निकल गयी है कि मैं कब्जा करूंगी लहरों पर। लहर कहती है, मैं राष्ट्रपति हो जाऊंगी, चालीस करोड़ लहरों पर कब्जा कर लूं। लहर पागल हो गयी है। सभी राष्ट्रपति पागल हो जाते हैं। वह पागलपन की दौड़ है। और अगर पागलों को खोजना हो तो पागलखानों में नहीं जाना चाहिए, राजधानियों में चला जाना चाहिए। वहां वह सब इकट्ठे मिल जाते हैं। लेकिन वह भी ईश्वर की खोज में लगे हैं, गलती से राजधानी पहुंच गये। वे गलत रास्ते पर जा रहे हैं ईश्वर को खोजने को।

जो पद को खोज रहा है, वह भी ईश्वर को ही खोज रहा है। क्योंकि ईश्वर परम-पद है। उसके आगे फिर कोई पद नहीं है। लेकिन गलत ढंग से खोज रहा है। वह जो धन को खोज रहा है, वह भी ईश्वर को खोज रहा है; लेकिन गलत ढंग से खोज रहा है। वह जो प्रेम में, पत्नी में, बेटे में खोज रहा है, वह भी गलत ढंग से खोज रहा है क्योंकि वह इतने छोटे में खोज रहा है कि मिल नहीं सकता है। इतनी बड़ी आकांक्षा है और इतनी छोटी खोज है। आकांक्षा तो यह है कि सारे जगत् की उपलब्धि हो जाये, सारे विश्व की उपलब्धि हो जाये। इतनी बड़ी आकांक्षा है तो बिना परमात्मा को खोजे वह पूरी नहीं होगी।

दोनों रास्ते अलग हैं। अगर लहर दूसरी लहरों पर कब्जा करने निकल जाये तो यह एक रास्ता है जो गलत रास्ता है, और अगर लहर अपने भीतर उतर जाये और पता पा ले कि कौन है नीचे, तो सारी लहरों पर कब्जा मिल ही गया

क्योंकि सारी लहरें अलग न रहीं। अब कब्जा करने की कोई जरूरत न रही। वह हम्हीं हैं। जैसे ही लहर नीचे उतरती है, सागर मिल जाता है और उसे पता चल जाता है कि सब लहरें सागर की ही हैं। अब झंझट न रहा, जब सागर ही हम हैं तो दूसरी लहर पर कब्जा करने की क्या बात है। अब सबके भीतर हम ही हो गये।

इसलिए यह तो पूछें मत कि हम झंझट में क्यों पड़ें? कोई नहीं कहता कि पड़ें। लेकिन आप पड़े ही हुए हैं। उपाय नहीं है झंझट के बाहर होने का। झंझट से गुजरेंगे तो बाहर हो भी सकते हैं। जब आप यह पूछते हैं, हम झंझट में क्यों पड़ें, तो ऐसा लगता है जैसे पड़ने का निर्णय आप कर रहे हैं। नहीं, आप पड़े ही हुए हैं। जीवन में होना ही झंझट में होना है। यह कोई मेरी बात सुनकर आप ईश्वर की खोज पर नहीं चले गये हैं। ईश्वर की खोज पर चले गये होंगे इसलिए मेरी बात सुनने चले आये हैं। यह कोई मेरी बातें सुनकर आपके मन में प्रश्न पैदा नहीं हो जायेंगे, प्रश्न होंगे आपके मन में इसलिए मेरी बातें सुनने आये हैं। खोज है जारी, चल रही है। खोज पूरी हो सकती है अगर हम भीतर की तरफ जायें तो हम पा लेंगे। हम बाहर की तरफ खोजते रहें तो और खो देंगे, पाना तो बहुत दूर है। और खो देंगे। कुछ लोग हैं जो भिखारी ही पैदा होते हैं और भिखारी ही मर जाते हैं। धन हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यश हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पद हो, प्रतिष्ठा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि ये सारी की सारी बाहर की खोजें हैं जिनकी सीमाएं हैं और असीम की आकांक्षा है मन में। और सीमित से तृप्ति कभी भी नहीं हो सकती। कोई किसी प्रेमी से तृप्त नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रेमी की आखिरी खोज परम प्रेमी के लिए है। जब तक परमात्मा ही प्रेमी की तरह

न मिल जाये तब तक तृप्ति का कोई उपाय नहीं है। खोज तो चल ही रही है।

उन्होंने यह भी पूछा है कि यह खोज है ही क्यों ? इसकी जरूरत ही क्या है ?

यह तो कभी परमात्मा मिल जाये तो उससे पूछ लेना क्योंकि इसके लिए सिवाय उसके और कोई उत्तर नहीं दे सकता। यह है ही क्यों ? यह तो परमात्मा मिले तो उससे पूछ लेना। हालांकि अब तक जितने लोग मिले हैं, पूछ नहीं पाये। क्योंकि मिलते ही पूछना भूल जाते हैं। अब जिन मित्र ने पूछा है, खूब पक्का लिखकर रखना कि भूल न जायें। लेकिन है खतरा वही, अब तक कोई नहीं पूछ पाया। क्योंकि जैसे ही वह मिल जाता है, सब मिल जाता है, पूछने का मन ही चला जाता है।

मैंने सुना है, एक समुद्र के किनारे एक मेला भरा हुआ था। बहुत लोग गये थे। दो नमक के पुतले भी गये थे वहां। लोगों में विवाद होने लगा, सागर की गहराई कितनी है ? तो नमक के पुतले गुस्से में आ गये, तेजी में आ गये। तो उन्होंने कहा, हम अभी कूदकर पता लगा आते हैं। एक पुतला कूद गया। फिर लोग किनारे पर खड़े देखते रहे। वह नहीं लौटा, नहीं लौटा, नहीं लौटा। बहुत परेशानी हुई। दूसरे पुतले ने कहा, मैं अभी उसका पता लगाकर आता हूं। वह भी कूद गया। वह भी नहीं लौटा, नहीं लौटा, नहीं लौटा। फिर मेला बिछुड़ गया। हर साल उसी दिन मेला लगता है, उस समुद्र के तट पर, इसी प्रतीक्षा में कि शायद वे नमक के पुतले अब तक लौट आयें। वे लौटते ही नहीं क्योंकि सागर में नमक का पुतला जायेगा तो घुलेगा, बह जायेगा, मिट जायेगा, खो जायेगा। लौटकर खबर नहीं दे पायेगा। और भीतर जितना जायेगा उतना मिटता चला जायेगा। ठीक गहराई

तक पहुंचते-पहुंचते बचेगा कौन जो पूछ ले कि गहरे कितने हो ? कितनी है गहराई ? यह पूछने को बचेगा कौन ? ये सब लहर के सुख हैं जो पूछ रही है। प्रश्न सब लहर के हैं, उत्तर सब सागर में हैं। लेकिन प्रश्न लहरें पूछती हैं, सागर के पास सब उत्तर हैं। और जब लहर सागर में उतर कर जाती है तो प्रश्न खो जाते हैं, पूछने को कुछ नहीं रह जाता।

यह जो आप पूछते हैं, यह है ही क्यों ? यह सब क्यों है ? यह प्रकृति क्यों है ? यह होना क्यों है ? जीवन क्यों है, हम बने क्यों हैं ? यह आप पूछते रहें, पूछते रहें, पूछते रहें, कोई उत्तर नहीं है। और कोई उत्तर देता हो तो बेईमान है। उत्तर है नहीं। दिया गया नहीं, दिया जा सकता नहीं। हां, एक कोई दे सकता है उत्तर जो नीचे है सबके भीतर फैला, जो सब देखा है—आना और जाना और होना। अनंत लीला देखी है। दे सकता है उत्तर। पहुंच जायें और उससे पूछ लें। लेकिन अभी तक कोई पूछ नहीं पाया। जो जाता है, मिट जाता है। यानी ऐसा कुछ है जब हम उसके सामने खड़े होते हैं तो हम मिट जाते हैं और जब तक हम होते हैं तब तक वह सामने नहीं होता। मुलाकात सीधी-सीधी नहीं हो पाती कि सामने खड़े हो जायें और पूछ लें कि क्यों है यह सब ?

सच यह है कि यह प्रश्न जो है, एब्सर्ड, यह प्रश्न जो है गलत ही है। गलत क्यों ? गलत इसलिए है कि हम जीवन के अंतिम 'क्यों' का उत्तर नहीं पा सकते हैं। वह जो अल्टीमेट हवाई, जो आखिरी 'क्यों' है, उसका उत्तर हम नहीं पा सकते हैं। क्यों नहीं पा सकते हैं ?

इसलिए नहीं पा सकते हैं कि कोई भी उत्तर मिले, हम फिर उसमें 'क्यों' ? पूछ सकते हैं। कोई भी उत्तर मिले, 'क्यों' पूछने में क्या तकलीफ होगी ? कोई कहता है, ईश्वर

ने जगत् को बनाया। और हम पूछते हैं कि ईश्वर को किसने बनाया? अब कोई कहता है कि 'अ' नाम के आदमी ने ईश्वर को बनाया। हम पूछते हैं, अ नाम के आदमी को किसने बनाया? अब यह पूछना चलता रहे, चलता रहे, चलता रहे, तो इसका अन्त कैसे आ सकता है। इसका अन्त नहीं आ सकता क्योंकि जो प्रश्न है वह ऐसा है जो हर उत्तर पर लागू हो जायेगा। कैसा भी उत्तर दिया जाये क्यों फिर भी पूछा जा सकता है, क्यों? इसलिए जो बहुत बुद्धिमान हैं, वे क्यों के सम्बन्ध में चुप रह गये हैं। उनका कहना है कि क्यों की बात ही व्यर्थ है। इसमें पूछा ही नहीं जा सकता। इन्फिनिट-रिग्रेस, यह अन्तहीन हो जायेगी, इसका कोई अर्थ नहीं है।

बच्चों की कहानी पढ़ी होगी। छोटे बच्चे क्यों, क्यों पूछते ही चले जाते हैं। वे पूछते हैं; और आगे—अगर कोई छोटे बच्चों को कहानी सुनाये और कहे कि राजा रानी का विवाह हो गया और वे दोनों आनन्द से रहने लगे। हालांकि यह बिल्कुल झूठी बात है, विवाह के बाद कोई आनन्द से रहता नहीं। लेकिन, सब कहानियां यही कहती हैं और इसके आगे कुछ भी नहीं बताती हैं क्योंकि इसके आगे बताना खतरनाक है, वह तो आदमियों को खुद ही पता चल जाता है कि आगे क्या होता है। इसलिए सब कहानियां यहां खत्म हो जाती हैं कि उनका विवाह हुआ और वे दोनों आनन्द से रहने लगे। आगे बात ही नहीं। फिल्म भी यहीं खत्म होती है, कहानी, उपन्यास, सब यहीं खत्म हो जाते हैं। क्योंकि इसके आगे बहुत खतरनाक दुनिया शुरू होती है, जिसको कि बताना ठीक नहीं है। लेकिन बच्चे फिर भी पूछते हैं कि फिर क्या हुआ? फिर क्या हुआ? बच्चे हैं कि पूछते ही चले जाते हैं।

एक कहानी मैं पढ़ रहा था बच्चों की। वह कहानी बहुत

बढ़िया है। वह आपने भी सुनी होगी। बच्चों ने तो बहुतों ने जानी है। एक बूढ़ी स्त्री है, वह अपने नाती-पोतों को कहानियां सुनाती है। वे नाती-पोते उसका सिर खाये जाते हैं। पूछते हैं—फिर, फिर क्या हुआ? वह बूढ़ी थक जाती है, थक जाती है, लेकिन वह पूछते हैं फिर क्या हुआ। फिर उस बूढ़ी ने एक कहानी ईजाद की। उसने कहा—एक वृक्ष है एक सागर के किनारे। उस पर अनंत पक्षी बैठे हुए हैं। एक पक्षी उड़ा, फुर्र... । तो उनके बेटों ने पूछा, फिर क्या हुआ? उसने कहा, दूसरा पक्षी उड़ा, फुर्र... । पूछे, फिर क्या हुआ? वह बुढ़िया उत्तर देती चली जाती है। फिर सब बेटे धीरे धीरे थक जाते हैं। उन्होंने कहा, क्या यही होता रहा? फिर क्या हुआ? वह बुढ़िया कहती है, एक पक्षी उड़ा फुर्र, और वह बुढ़िया कहती है, अनंत पक्षी बैठे हुए हैं उस वृक्ष पर इसलिए अब थकेगी नहीं, यह कहानी अब खत्म नहीं होगी, यह चलती रहेगी। सब बेटे थक जाते हैं और सो जाते हैं।

हम जो क्यों पूछते हैं, वह अन्तहीन हो जायेगा, उसका कोई अर्थ नहीं है। हम पूछते हैं, आदमी क्यों हुआ? हम बेमानी प्रश्न पूछ रहे हैं। हम कोई भी उत्तर देंगे, हम फिर पूछेंगे, वह क्यों हुआ? हमें लगेगा, हम बहुत बुद्धिमानी का प्रश्न पूछ रहे हैं। बहुत से तथाकथित बुद्धिमान ऐसे प्रश्न पूछते ही रहे हैं। शास्त्र भरे हैं इस तरह के प्रश्नों से। लेकिन सब बच्चों के प्रश्न हैं, बुद्धिमानों के प्रश्न नहीं हैं। क्योंकि बुद्धिमान एक बात समझ लेगा कि क्यों का उत्तर सम्भव नहीं है। क्योंकि 'क्यों' हर उत्तर पर लागू हो सकता है। इसलिए पहले ही क्यों का उत्तर क्यों देना? क्योंकि उससे कोई मतलब ही नहीं है—आगे, आगे, आगे होता चला जायेगा।

मैं नहीं देता उत्तर। मैं यह कहता हूं, जीवन है। आना हुआ है, जाना होगा। क्यों है, मुझे पता नहीं है। किसी को

भी पता नहीं है। लेकिन अज्ञान को स्वीकार करने में बड़ी कठिनाई है। सभी पंडितों को यह ख्याल है कि उनको सभी पता होना चाहिए। सभी ज्ञानियों को यह भ्रम है कि उन्हें सर्वज्ञ होना चाहिए। वे परमात्मा को जानने के लिए कुछ बचने नहीं देना चाहते हैं। वे पूरा खुद ही जान लेते हैं। लेकिन वे कितना ही जान लें, आखिरी क्यों का उत्तर आज तक किसी शास्त्र में नहीं है और न किसी बुद्ध ने दिया, न किसी महावीर ने, न किसी कृष्ण ने, न किसी क्राइस्ट ने। आज तक आखिरी क्यों का उत्तर दिया ही नहीं गया है इसलिए नहीं कि वे लोग नहीं जानते थे, बल्कि इसलिए कि वह दिया ही नहीं जा सकता है। वह अल्टीमेट क्वेश्चन, आखिरी, अन्तिम प्रश्न का अर्थ ही यह होता है कि उसका उत्तर नहीं है। और अगर आप उसे खोजने जायेंगे तो प्रश्न मिटेगा और साथ ही आप भी मिट जायेंगे। अगर आप चरम प्रश्न की खोज में गये तो आप भी खो जायेंगे, जैसे नमक का पुतला सागर में खो गया।

कबीर ने कहा है कि बहुत खोजता था; बहुत खोजता था; खोजते-खोजते फिर खुद ही खो गया। बहुत खोजा, बहुत खोजा, फिर खोजते-खोजते खुद ही खो गया। और जब खुद खो गया तब वह मिल गया जिसकी खोज थी। और जब तक खोजता था वह न मिला क्योंकि तब तक मैं था। इन दोनों का मिलना नहीं होता। वह गली बहुत संकरी है कबीर कहते हैं, बहुत संकरी है, क्योंकि उसमें दो नहीं समाते। उसमें जब तक हम समाये रहते हैं, तब तक वह लापता रहता है, और जब वह आ जाता है तब अचानक हम पाते हैं कि हम गये। क्योंकि लहर जब तक लहर की तरह अपने को जानती है, तब तक अपने को सागर की तरह नहीं जान सकती है। यह दोनों जानना एक साथ कैसे हो सकते हैं कि एक लहर अपने

को लहर की तरह भी जाने और साथ ही अपने को सागर की तरह भी जान ले। जिस क्षण वह जानेगी कि मैं सागर हूं उस क्षण जानेगी कि अब मैं लहर न रही। और जब तक वह जानती है, मैं लहर हूं तब वह जानती है, मैं लहर हूं और सागर नहीं हूं। इसलिए लहर की और सागर की कभी मुलाकात नहीं होती। लहर और सागर का मिलन होता है। मुलाकात नहीं होती। लहर खो जाती है, सागर हो जाती है। लेकिन मुलाकात नहीं होती क्योंकि मुलाकात होने के लिए लहर को अब भी होना जरूरी है।

इसलिए आदमी और ईश्वर की अभी तक कोई वार्ता, कोई डायलॉग, कोई बातचीत अभी तक नहीं हुई, आमने-सामने बैठकर कोई बात नहीं हुई। लेकिन अगर कभी हो जाये तो सब हो सकता है। जीवन इतना रहस्यपूर्ण है कि पता नहीं, क्या हो जाये। कभी हो जाये तो कागज में ठीक से लिखकर रखना, नहीं तो वक्त पर भूल न जाये। वह भूल सकता है। यह ध्यान में रहे, हमारे अधिकतम प्रश्न, जो जीवन के सम्बन्ध में उठते हैं, वे हमारे दुख, हमारी बेचैनी, हमारी चिन्ता, हमारी परेशानी के प्रश्न हैं।

एक आदमी को सन्निपात हो गया, उसे बुखार चढ़ा और डिग्रियां बढ़ती चली गयीं और थर्मामीटर अपनी आखिरी सीमा बताने लगा और घर के लोगों से वह आदमी पूछता है कि मेरी खाट उड़ रही है—पूरब उड़ रही है कि पश्चिम उड़ रही है, मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। बताओ, मेरी खाट पूरब उड़ती है कि पश्चिम? तो घर के लोग कहते हैं, शांत पड़े रहो, थोड़ी देर में ठीक हो जाओगे। लेकिन वह आदमी कहता है, ठीक और गलत का सवाल नहीं है। सवाल यह है कि मेरी खाट उड़ रही है, पूरब उड़ रही है कि पश्चिम उड़ रही है? अब घर के लोग क्या करें? उसे उत्तर दें?

और क्या कोई ठीक उत्तर दिया जा सकता है ? अगर घर के लोग कहें, पूरब उड़ रही है तो यह गलत है क्योंकि खाट उड़ ही नहीं रही है। अगर घर के लोग कहें पश्चिम उड़ रही है तो भी गलत है। अगर घर के लोग कहें, उड़ ही नहीं रही है तो सन्निपात वाला हंसता है। वह कहता है, पागल हो ? न उड़ रही होती तो मैं पूछता क्यों ? उड़ रही है, यह तो पक्का रहा है. यह तो बात ही मत उठाओ। सवाल यह नहीं है कि उड़ रही है कि नहीं उड़ रही है। सवाल यह है कि पूरब उड़ रही है कि पश्चिम उड़ रही है। तो घर के लोग उसके सिर पर ठण्डे पानी की पट्टी रखते हैं, डाक्टर को भागते हैं लेने क्योंकि घर के लोग उसके प्रश्न का उत्तर देने नहीं बैठ जाते क्योंकि वे कहते हैं, उत्तर देने में खतरा हो सकता है। वह आदमी मरने के करीब है। वे भागते हैं, वे उससे कहते हैं, जरा ठहरो, बुखार उतर जाने दो तो बता देंगे। वह इस आशा में कहते हैं कि बुखार उतर जाने पर वह पूछेगा नहीं । बता तो फिर भी न सकेंगे क्योंकि खाट उड़ ही न रही थी। सिर्फ एक आशा है, बुखार उतर जायेगा तो कोई पूछेगा नहीं। और क्या आप को ख्याल है, बुखार उतर जाने पर वह पूछेगा ? बुखार उतर जाने पर घर के लोग ही पूछेंगे कि क्या ख्याल है ? खाट पश्चिम उड़ रही है कि पूरब ? तो वह हंसेगा। वह कहेगा, पागल हो गये हो ? खाट उड़ ही नहीं रही।

हमारे जो प्रश्न हैं—जिनको हम मेटाफिजिकल कहते हैं, बड़े दार्शनिक कहते हैं, बड़े गहरे प्रश्न कहते हैं, बहुत गहरे-वहरे नहीं हैं। हमारे चित्त की बेचैनी और अशांति से उठे हुए प्रश्न हैं। क्या आपको पता है कि कभी आपने सुख की हालत में पूछा हो कि सुख क्यों है ? कभी नहीं। एक आदमी ने नहीं पूछा। जब कोई आदमी पूरे सुख की हालत में होता है तो वह यह नहीं पूछता कि सुख क्यों है ? लेकिन जब दुख

की हालत में होता है तो पूछता है कि दुख क्यों है ? जब कोई आदमी स्वस्थ होता है तो कभी पूछता है कि स्वास्थ्य क्यों है ? लेकिन जब बीमार होता है तो पूछता है कि बीमारी क्यों है ? जब कोई आदमी किसी को प्रेम करता है और प्रेम में जीता है और प्रेम में होता है तो वह यह नहीं पूछता है कि प्रेम क्यों है ? लेकिन जब प्रेम टूट जाता है और चित्त दर्पण की तरह खण्ड-खण्ड होकर बिखर जाता है तो वह पूछता है कि प्रेम क्यों टूट जाता है ? जब किसी मां का बेटा जिन्दा होता है तो कभी नहीं पूछती कि बेटा जिन्दा क्यों है, लेकिन जब वह मर जाता है तो वह छाती पीटती है और कहती है कि मेरा बेटा मर क्यों गया ?

कभी आपने सोचा कि यह 'क्यों' हमेशा दुख में ही उठता है ? क्यों, कभी सुख में नहीं उठता। असल में जीवन हमारा इतने दुख में है कि हम पूरे जीवन के सम्बन्ध में पूछते हैं कि जीवन क्यों है ? यह प्रश्न जो है, मेटाफिजिकल नहीं है, दार्शनिक नहीं है, साइकोलॉजिकल है। और इसका उत्तर दर्शन-शास्त्र में नहीं है, इसका उत्तर मनस्शास्त्र में है। मनस्शास्त्र यह कहता है कि जब कोई आदमी पूछे किसी चीज के सम्बन्ध में कि यह क्यों है तो उसका उत्तर मत देना, समझना कि इस-की स्थिति गड़बड़ी में पड़ गयी है। उसका इलाज करना। एक मां पूछती कि मेरा बेटा क्यों मर गया ? तो हम क्या उत्तर देते हैं। उसने बेटे के होने को तो चुपचाप स्वीकार किया था, न होने को स्वीकार नहीं कर पाती। वह दुख से भर गयी है, वह पीड़ा से भर गयी है।

हम जब प्रश्न पूछते हैं पूरे जीवन के सम्बन्ध में तो उसका मतलब है कि पूरा जीवन हमारा दुख, चिन्ता, उदासी और गहरी पीड़ा से भर गया है। इसलिए प्रश्न उठ रहा है। अगर आनन्द से भर जायेगा, प्रश्न खो जायेगा। जिस दिन पूरे

आनन्द को कोई जीता है उस दिन प्रश्न पूछता ही नहीं । असल में सब दर्शन, सब फिलॉसफी दुख से पैदा होते हैं । सब दुखी चित के जन्म हैं । आनंदित क्यों पूछे, क्यों ? सवाल ही नहीं उठता, ख्याल ही नहीं आता । आनन्द तो स्वीकृत हो जाता है । तब क्यों का सवाल नहीं उठता है ।

मैं आपसे यह नहीं कहता हूं कि आप न पूछें, जब तक चित्त दुखी है, पूछेंगे ही । पूछते ही रहेंगे । लेकिन ध्यान रहे, दुखी चित्त रहेगा, पूछते रहें, उत्तर नहीं मिलेगा । न दुखी चित्त मिटेगा । इस 'क्यों' को एक सिम्बल, एक प्रतीक सम-झना दुखी चित्त का और प्रश्नों की खोज में जाकर दुखी चित्त को मिटाने की खोज में चले जाना । जिस दिन चित्त आनन्द से भर जायेगा उसी दिन प्रश्न विदा हो जायेगा । ऐसे गिर जाते हैं कि पता ही नहीं चलता कि कभी थे । जो लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं, हम समझते हैं कि उनको सभी प्रश्नों के उत्तर मिल गये होंगे तो हम बहुत गलत समझते हैं । जो लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं वे वे लोग नहीं हैं जिन्हें सभी प्रश्नों के उत्तर मिल गये । वे वे लोग हैं, जिनके सभी प्रश्न गिर गये । जिनके पास कोई प्रश्न ही न रहा ।

प्रश्न पूछता है अज्ञान से भरा चित्त । ज्ञान से भरा चित्त प्रश्न नहीं पूछता । ऐसा नहीं है कि उत्तर मिल जाते हैं । मैंने कहा न, सन्निपात से उतर आया आदमी वापस, तो यह थोड़े ही है कि उसको उत्तर मिल जाता है कि पूरब उड़ती थी कि पश्चिम । उत्तर नहीं मिलता है, सिर्फ प्रश्न गिर जाते हैं ।

यह ख्याल रखना, ज्ञान में प्रश्न गिरते हैं उत्तर नहीं मिलते । सिर्फ प्रश्न गिर जाते हैं । और जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं वह प्रश्नों का गिरा देने की प्रक्रिया है । वहां सब प्रश्न गिर जाते हैं और चित्त उस आनन्द में पहुंच जाता है जो निष्प्रश्न है । जो अन्क्वेश्चन है, बिना प्रश्न पूछे भीतर

खड़ा होगा और जिसमें हम इस भांति लीन हो जाते हैं कि प्रश्न पूछ कर भी उसका खण्डन करने की हिम्मत हम न करेंगे क्योंकि प्रश्न पूछने से बाधा हो जायेगी । इतने रस में विभोर जब चित्त हो जाता है तो प्रश्न नहीं पूछता क्योंकि डरता है कि प्रश्न पूछा तो कहीं रस खण्डित न हो जाये । कहीं प्रश्न पूछा तो संगीत का बहाव टूट न जाये, कहीं प्रश्न पूछा । यह भी सवाल नहीं उठता कि मैं पूछूं कि न पूछूं । सब खो जाता है । सब चुप हो जाता है, सब मौन हो जाता है ।

उस मौन में हम जानते हैं, उत्तर नहीं, यही कि हमारे सब प्रश्न गलत थे । अज्ञान से उठे थे । यही कि हमने पूछा, वही भूल था । और तब हमें गुरुओं पर बहुत हंसी आती है । क्योंकि तब पता लगता है कि जो हमने पूछा था, वह तो पागलपन था ही, लेकिन जिन्होंने उत्तर दिये थे वे भी गजब के पागल थे ।

अब एक आदमी सन्निपात से नीचे उतर आया, अब उसे पता चला कि खाट उड़ती ही न थी सन्निपात में, प्रतीत हो रही थी कि उड़ रही है । अब अगर घर में किसी ने उसका उत्तर दिया होगा कि पूरब उड़ती है तेरी खाट तो वह आदमी कहेगा, यह आदमी पागल मालूम होता है । मैं तो सन्निपात में था, वह ठीक । लेकिन इस आदमी ने कहा कि पूरब उड़ती है ।

इसलिए मैं कहता हूं, जिस दिन जीवन में वह क्रांति उतरती है जिसे परमात्मा का मिलन कहें, सभी गुरु एकदम पागल मालूम होते हैं । उस दिन बड़ी हैरानी होती है कि कैसे-कैसे जवाब देने वाले थे । कोई कहता था सात स्वर्ग हैं, कोई कहता था, सात नर्क हैं । कोई कहता था तीन हैं कोई कहता था छः हैं । कोई कुछ कहता था, कोई कुछ कहता था । हजार उत्तर थे, लाख उत्तर थे । हजार सम्प्रदाय थे,

लाख गुरु थे। न मालूम कितने-कितने पंथ थे, न मालूम क्या-क्या जवाब थे। और मजा यह है कि वह जो प्रश्न पूछा था वह अज्ञान में पूछा गया था। उसका कोई उत्तर ही न था। वह प्रश्न ही गलत था। असल में अज्ञान में ठीक प्रश्न पूछे ही नहीं जा सकते।

अज्ञान में ठीक प्रश्न कैसे पूछे जा सकते हैं? अन्धा आदमी प्रकाश को नहीं जानता तो प्रकाश के सम्बन्ध में ठीक सवाल कैसे पूछ सकता है। और आंख वाला प्रकाश को जानता है इसलिए सवाल ही नहीं पूछता। सवाल पूछने की कोई जरूरत नहीं है। अब यह दिक्कत है जीवन की कि आंख वाला सवाल नहीं पूछता प्रकाश के सम्बन्ध में? जो कि पूछे तो कुछ मतलब हो। और अन्धा पूछता है जिसके पूछने का कोई मतलब नहीं है। यहां हालतें ऐसी हैं कि लंगड़े चलने की कोशिश करते हैं और जिनके पैर हैं वे आराम से बैठे हुए हैं। अन्धे रास्ता खोज रहे हैं और जिनके पास आंखें हैं वे विश्राम कर रहे हैं, वे रास्ता ही नहीं चलते। ज्ञानी वह नहीं है जिसको सब प्रश्नों के उत्तर मिल गये। ज्ञानी वह है जो उस जगह पहुंचा शांति की, जहां उसने पाया सब प्रश्न फिजूल हैं। और चुप हो गया, और नहीं पूछा, और पा गया सब।

जानना, प्रश्नों का उत्तर नहीं है, जानना, प्रश्नों का अभाव है, अनुपस्थिति है। ध्यान यही प्रयोग है जहां सब अनुपस्थित हो जाता है और लहर धीरे से उतर कर सागर के साथ एक हो जाती है। और बहुत से प्रश्न रहे, वह कल मैं बात करूंगा। सुबह हम यहां ध्यान के लिए बैठ जायेंगे। तो जिनको उस जगह पहुंचना हो जहां कि उससे प्रश्न पूछा जा सके, परमात्मा से, सागर से, वह सुबह आ जायें। लेकिन सुबह सिर्फ वे ही लोग आयें जो लहर छोड़कर सागर में उतरने के लिए उत्सुक हों। तो इतने अशांत हो गये हैं कि अब शांति की तरफ

जाने का जिन्हें ख्याल आये।

मेरी बातों को इतनी शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

साधना-शिविर, जूनागढ़, दिनांक १० दिसम्बर १९६७, रात्रि

४. प्रभु का द्वार

मेरे प्रिय आत्मन,

'जीवन ही है प्रभु', इस सम्बन्ध में एक मित्र ने पूछा है, कैसे दिखाई पड़े हमें कि जीवन ही प्रभु है। क्योंकि हमें तो चारों ओर दोष ही दिखायी पड़ते हैं। सबमें दोष दिखायी पड़ते हैं। 'क्यों दिखाई पड़ते हैं सबमें दोष ?' इस सम्बन्ध में उन्होंने पूछा है।

प्रभु की खोज में एक सूत्र यह भी है, इसलिए इसे समझ लेना जरूरी है। निश्चित ही दोष दिखायी पड़ते हैं दूसरों में। कारण क्या है ? कारण है सिर्फ एक—अपने अहंकार की तृप्ति। दूसरे में दोष दिखायी पड़ता है। दूसरे में दोष की खोज चलती है। उसका राज छोटा-सा है।

शायद यह घटना सुनी होगी कि अकबर ने एक दिन अपने दरबार में एक लकीर खींच दी और अपने दरबारियों से कहा, इसे बिना छुए, बिना मिटाये छोटी कर दो। वह बहुत हार गये परेशान हो गये। बीरबल उठा और उसने एक बड़ी लकीर खींच दी। उसी छोटी लकीर के पास एक बड़ी लकीर खींच दी। वह लकीर उतनी ही रही, न मिटायी, न छोटी की, लेकिन छोटी हो गयी।

जब हम दूसरे में दोष की तलाश में निकल जाते हैं, तब हम दूसरे की लकीर छोटी कर रहे हैं; ताकि हमें अपनी बड़ी लकीर मालूम पड़ने लगे। अपने को बड़ा देखने का सरलतम

रास्ता यही है कि हम दूसरे को छोटा करके देखना शुरू कर दें। दूसरा रास्ता अपने को बड़ा करने का बहुत कठिन है, कि हम सच में अपने को बड़ा करें। उसमें अपने को छूना पड़ेगा, बदलना पड़ेगा, मिटाना पड़ेगा, नया करना पड़ेगा। सरल रास्ता यह है कि अपने को छूना ही न पड़े। अपने में कुछ फर्क ही न करना पड़े। हम जैसे हैं वैसे ही रहें, और बड़े हो जायें। तो सरल रास्ता यह है कि हमारे पास जो भी आते हों, उनको हम छोटा करके देखें।

अगर जिन्दगी में बड़ी यात्रा करनी हो और जीवन को उन महान रास्तों पर ले जाना हो कि जीवन में महानता का सूर्य निकले, तब तो फिर बहुत कुछ करना पड़ेगा। खुद को मिटाना पड़ेगा, नया करना पड़ेगा; खुद को बदलना पड़ेगा। मेहनत की बात होगी, श्रम लगेगा, साधना लगेगी। इतनी मेहनत में जाने को कोई आतुर नहीं है, उत्सुक नहीं है। तो सरल तरकीब, शार्ट कट, निकटतम का रास्ता—जिसमें बिना कुछ किये मुफ्त में हम बड़े हो जाते हैं, एक ही है कि जो भी हमारे निकट आता हो, उसे हम छोटा करके देख लें। और जब हम तय ही कर लें किसी को छोटा करके देखने का तो दुनिया की कोई ताकत हमें रोक नहीं सकती। क्योंकि हमारी मर्जी की बात है। हम छोटा करके देख ही सकते हैं। हम किसी को भी छोटा करके देख सकते हैं।

लेकिन इस भांति हमारे भीतर जो बड़ा हो जाता है, वह हमारी आत्मा नहीं है। इस भांति जो हमारे भीतर बड़ा हो जाता है, उसी का नाम अहंकार है। अगर हम अपने को बदलेंगे तो आत्मा बड़ी हो जायेगी। इतनी बड़ी हो सकती है कि पूरे परमात्मा के साथ एक हो जाये। अपने को बदलेंगे तो आत्मा बड़ी होगी और अपने को बिना बदले अगर बड़ा करना है तो अहंकार बड़ा होगा, मैं बड़ा हो जाऊंगा। आत्मा

तो और छोटी हो जायेगी।

और यह भी ध्यान रहे, अहंकार जितना बड़ा होगा, आत्मा उतनी छोटी हो जायेगी और अहंकार जितना छोटा होगा, आत्मा उतनी बड़ी हो जायेगी।

तो जो व्यक्ति भी अपने अहंकार को बड़ा करने में लगा है, वह जाने-अनजाने बहुत गहरे अर्थों में नुकसान उठा रहा है। हां, ऊपर उसे फायदे दिखायी पड़ेंगे। अहंकार को बड़ा करके देखेगा, दूसरे छोटे दिखायी पड़ेंगे, खुद बड़ा दिखायी पड़ेगा। लेकिन जितना अहंकार बड़ा होगा, उतनी भीतर आत्मा छोटी होती चली जायेगी। और जितना अहंकार बड़ा होगा, परमात्मा से मिलन का रास्ता उतना ही मुश्किल होता चला जायेगा। क्योंकि मेरे 'मैं' के अतिरिक्त मुझे और कोई भी रोके हुए नहीं है। और जब तक मैंने जिद्द की है कि मैं 'मैं' रहूंगा तब तक मैं विराट से मिल नहीं सकता हूं। वही तो बाधा बनेगी। इसीलिए हम दूसरे में दोष देखने के लिए आतुर होते हैं।

इसका यह मतलब नहीं है कि दूसरों में दोष नहीं होते। इसका यह मतलब भी नहीं है कि दूसरों में दोष हैं ही नहीं। दूसरों में दोष हों या न हों, यह सवाल गौण है महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या हम दूसरों में दोष देखकर अपने को बड़ा करने की चेष्टा में संलग्न हैं? अगर हम इस चेष्टा में संलग्न हैं तो हम बहुत आत्मघाती हैं। हम अपने हाथ से अपने को नुकसान पहुंचा रहे हैं, किसी और को नहीं। जिसमें हम दोष देख रहे हैं उसे तो फायदा भी हो सकता है, हमारे दोष देखने से। लेकिन हमें फायदा नहीं हो सकता। हो सकता है, हमारे दोष को देखने से वह दोष को बदलने में लग जाये। वह अपनी कमियों को बदलने में लग जाये, हमारे दोष देखने से। लेकिन अगर हमारा अहंकार तृप्त होता हो

तो हम बहुत खतरनाक ढंग से अपने ही हाथ-पैर काटने में लगे हैं। हमें कोई हित न होगा।

लेकिन एक इससे उल्टी भ्रांति भी चलती है। एक भ्रांति तो यह है कि हम सबमें दोष ही देखेंगे। इससे एक उल्टी भ्रांति भी है। कि अगर दोष होंगे भी तो हम आंख बन्द कर लेंगे, दोष न देखेंगे। वह उल्टी भ्रांति भी खतरनाक हो सकती है; और वह भी अहंकार को बढ़ाने वाली हो सकती है। अगर मैंने यह तय कर लिया है कि मैं किसी के दोष देखूंगा ही नहीं तो मेरे भीतर एक नये तरह का अहंकार बढ़ना शुरू होगा कि मैं ऐसा आदमी हूं जो किसी के दोष कभी नहीं देखता। चोर मेरे सामने चोरी करेगा तो मैं आंखें बन्द कर लूंगा और चार गुण्डे एक स्त्री पर हमला करेंगे तो मैं पीठ फेर कर अपने रास्ते पर चला जाऊंगा। मैं किसी के दोष नहीं देखता हूं। और चूंकि मैं दोष नहीं देखता हूं इसलिए मैं एक बहुत महान आदमी हूं।

पहली भूल में अहंकार तृप्त होता है, दूसरी भूल में भी तृप्त हो सकता है। इसलिए असली सवाल दोष देखने और न देखने का नहीं है, सवाल है देखने से। न देखने से अहंकार को तो नहीं भर रहे हैं हम अपने? लेकिन जो आदमी अहंकार नहीं भर रहा है, वह सिर्फ देखता है। उसे दोष दिखायी पड़ सकते हैं, निर्दोषता भी दिखायी पड़ सकती है। वह वही देखता है जो है, उस जो है के देखने से अपने अहंकार को न भरता है, न छोटा करता है, न बड़ा करता है।

एक बात चलती है कि साधु को किसी के दोष नहीं दिखायी पड़ते। गलत है वह बात। एकदम व्यर्थ है वह बात। असाधु को सबमें दोष ही दोष दिखायी पड़ते हैं, यह भी झूठ है। और साधु को बिल्कुल दोष न दिखायी पड़े, यह भी उतना ही झूठ है। दोष हैं। और एक ही आदमी में दोनों

बातें हो सकती हैं। एक आदमी पापी भी हो सकता है और साथ ही बड़ा पुण्यात्मा भी हो सकता है। इन दोनों में कुछ विरोध नहीं है। ऐसा नहीं है कि एक आदमी पुण्यात्मा ही हो, और ऐसा भी नहीं है कि एक आदमी पापी ही होता हो। जिन्दगी बहुत जटिल है। यहां एक ही आदमी में काले और सफेद रंग के सब भूत दिखायी पड़ सकते हैं। एक ही आदमी घड़ी-भर पहले इतनी महानता पैदा कर सकता है, और घड़ी-भर बाद एकदम क्षुद्र हो जाता है। यहां एक आदमी प्रेम कर सकता है, घृणा कर सकता है। एक ही आदमी। वही आदमी एकदम स्वार्थी हो सकता है, वही आदमी किसी क्षण में परार्थ में अपना जीवन भी लगा सकता है।

जीवन बहुत जटिल है। आदमी सरल और सीधा नहीं है कि हम एक निर्णय कर लें कि यह आदमी कांटा ही कांटा है, और वह आदमी फूल ही फूल है। नहीं, यहां एक ही गुलाब पर फूल भी लगते हैं और कांटे भी। यहां जिन्दगी बहुत ही जटिल है। यहां कांटे और फूल एक ही पौधे में भी लग जाते हैं। असाधु की एक भूल है कि वह कहता है कि हमें दोष ही दोष दिखायी पड़ते हैं। साधु की उल्टी भूल है और असल में साधु जिसे हम कहते हैं वह असाधु का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। असाधु जैसा खड़ा है, साधु उससे उल्टा शीर्षासन करके खड़ा हो जाता है और साधु हो जाता है। जो-जो असाधु करता है वह वह नहीं करता है। उससे उल्टा करने लगता है। असाधु को दोष दिखायी पड़ते हैं तो साधु को दोष दिखायी ही नहीं पड़ते। लेकिन जो आदमी शांत, मौन, सिर्फ देखने में साक्षी भाव रखेगा, उसे दोष भी दिखायी पड़ेंगे और निर्दोषता भी दिखायी पड़ने लगेगी। उसे जो बुरा है, बुरा भी दिखायी पड़ेगा जो भला है वह भला भी दिखायी पड़ेगा।

फर्क इतना ही पड़ेगा कि वह दूसरे को भला देखने के लिए

आतुर नहीं है न दूसरे में बुरा देखने को आतुर है। वह वही देखने को आतुर है जो है। जो है, सत्य को ही देखने को आतुर है। अपनी तरफ से कुछ भी थोपने को आतुर नहीं है। असाधु कहता है—हम सब पर दोष थोप कर रहेंगे। साधु कहता है—हम सबको निर्दोष करके रहेंगे। वे दोनों अपनी इच्छाएं दूसरों पर थोपते हैं। लेकिन इन दोनों से भिन्न, जिसको हम ठीक-ठीक दृष्टा कहें, वह वही देखता है, जो है। वह उस है में जरा भी फर्क नहीं करता। जो जैसा है, वैसा ही देखता है। और जब कोई दूसरे को वैसा ही देखता है जैसा है, तभी वह समर्थ हो पाता है अपने को भी वैसा ही देखने में जैसा वह है।

जो दूसरे में दोष देखेगा, वह सदा अपने को निर्दोष देखेगा। जो दूसरे को निर्दोष देखेगा, वह सदा अपने को दोष ही देखेगा। मैंने कहा कि एक-दूसरे के उल्टे हैं ये। अगर एक आदमी तय कर ले कि मैं सबमें बुरा देखूंगा तो उसे सबमें बुराई दिखाई पड़ेगी, सिर्फ अपने को छोड़कर। क्योंकि नहीं तो फिर मजा ही न रह जायेगा दूसरे में बुराई देखने से। अपने को भला बनाता जायेगा, दूसरे को बुरा बनाता जायेगा। इससे उल्टा आदमी भी हैं। वह कहता है कि हम किसी में दोष नहीं देखेंगे। सबको निर्दोष देखेगा तो अपने में दोष देखना शुरू कर देगा। यहां तक भी कर सकता है साधु की भूल आप करें और दण्ड वह अपने को दे। चोरी आप करें, उपवास वह करे, यह भी कर सकता है। लेकिन यह उल्टी स्थिति हो गयी, यह सम्यक् दर्शन न हुआ, राइट-विजन न हुआ। यह ठीक-ठीक दर्शन न हुआ।

ठीक दर्शन का मतलब है, सोने को सोना देखेंगे, मिट्टी को मिट्टी देखेंगे। वह भी आदमी पागल है जो मिट्टी को सोना देखता है और वह आदमी भी पागल है जो सोने को मिट्टी

देखता है। मिट्टी को जो मिट्टी देखता है, सोने को जो सोना देखता है।

तो मैं आपसे नहीं कहता कि किसी में दोष न देखें। मैं आपसे यह कहता हूं—किसी में दोष इसलिए मत देखें कि अपने को निर्दोष सिद्ध करना है। तब गलती बात है। और मैं यह भी नहीं कहता कि सभी को निर्दोष देखें क्योंकि सभी निर्दोष नहीं हैं। अगर सभी निर्दोष होते तो दुनिया बहुत अच्छी हो गयी होती, जिन्दगी बदल गयी होती, साधु-संन्यासी की भी कोई जरूरत न होती। हम कहते तो हैं कि साधु किसी में दोष नहीं देखता, तो फिर साधु समझाता क्या है, बताता क्या है, लोगों को सुधारने की कोशिश क्या कर रहा है? अगर सभी निर्दोष हैं, तो साधु को आत्महत्या कर लेनी चाहिए। क्योंकि फिर बदलना किसको है? अगर सभी परमात्मा हैं, तो उपदेश किसको दिया जा रहा है? समझाया किसको जा रहा है? नहीं, कहीं कुछ भूल है जिसको बदलना है। कहीं-न-कहीं चूक है जिसे बदलना है। नहीं तो जरूरत ही नहीं है कोई।

ठीक दर्शन चाहिए, अपना भी, दूसरे का भी। स्वयं का भी, बाहर का भी। और ठीक दर्शन बहुत अद्‌भुत बातें दिखायेगा। उस ठीक दर्शन में यह भी दिखायी पड़ेगा कि जब मैं दूसरे में दोष देख रहा हूं तो मूल कारण दूसरे का दोष है या दूसरे में दोष देखने का मेरा आनन्द है, यह भी दिखायी पड़ेगा। तब मैं सोचूंगा, समझूंगा, जब मैं किसी को चोर कहना चाहूं तो ऐसा मैं चोरी के कारण कहना चाहता हूं, या सिर्फ इसलिए चोर कहता हूं—ताकि मैं अपने भीतर समझ सकूं कि मैं चोर नहीं हूं।

बर्टेन्ड रसल ने कहीं कहा है कि अगर कहीं चोरी हो जाये तो जो आदमी सबसे जोर से चिल्ला रहा हो कि चोरी हो गयी, पकड़ो कोई चोर भाग गया, पहले उसको पकड़ लेना।

क्योंकि बहुत सम्भावना यह है कि उसी ने चोरी की है। क्योंकि चोरी से बचने की सबसे सरल तरकीब यही है कि आप इतने जोर से चोरी के खिलाफ चिल्लायें कि कोई यह सोच ही न सके कि इसने चोरी की है। कैसे आप सोचेंगे, जो आदमी खुद ही चिल्ला रहा है। उसको कोई नहीं पकड़ेगा। जो नेता भ्रष्टाचार के खिलाफ बहुत ज्यादा शोरगुल मचाता हो और कहता हो कि मिटा देंगे भ्रष्टाचार, एक साल में खत्म कर देंगे, उसको तो फौरन पकड़कर सूली पर लटका देना चाहिए। यह आदमी खतरनाक है। यह आदमी शोरगुल जो मचा रहा है, इसके पीछे कारण है। इसके पीछे कारण यह है कि इतने शोरगुल में एक बात तो पक्की हो जायेगी कि यह आदमी भ्रष्टाचारी नहीं है। फिर बाकी दुनिया होगी। कोई बदल नहीं पाता। दुनिया को अभी तक कोई नहीं बदल पाया कि एक साल में कोई बदल दे। वह नेता का ही पता नहीं चलता कि साल भर बाद वह नेता रहा कि नहीं, कहां है, कहां नहीं, इसका कोई पता नहीं चलता। लेकिन इतने जोर से जब कोई चिल्लाता है तो उसका कारण है मनोवैज्ञानिक। सरलतम तरकीब यही है। इसलिए जब एक चोर पकड़ा जाता है तो बाकी चोर उसकी निन्दा में संलग्न हो जाते हैं। गांव में एक चोर पकड़ा जायेगा तो पूरा गांव निन्दा करेगा—पूरा गांव निन्दा करेगा कि चोरी बहुत बुरी बात है, चोरी बहुत बुरी बात है। और हर आदमी बढ़-बढ़कर जोर से बात करेगा कि पड़ोसी ठीक से सुन लें कि मैं भी चोरी के खिलाफ हूं। ताकि पता चल जाये कि कम से कम मैं चोर नहीं होने वाला हूं।

जो व्यक्ति ठीक-ठीक देखने की कोशिश करेगा, उसे यह भी दिखायी पड़ेगा—उसे यह भी दिखायी पड़ेगा कि जब मैं दूसरे में भला देख रहा हूं तो मैं थोप तो नहीं रहा हूं!

है भी भला वहां या मैं थोप रहा हूं। क्योंकि कुछ लोग जिद्द किये हुए हैं कि वे भला ही देखेंगे। वे लोग भी खतरनाक हैं। इस देश में ऐसा ही हो गया है। इस देश में पांच हजार साल से ऐसे लोग हुए हैं, उन्होंने कहा, हम सबमें भलाई ही देखेंगे, इसलिए आज पृथ्वी पर इस देश में बुरा देश खोजना मुश्किल है। क्योंकि बुराई देखी नहीं, तो बुराई को बदलने का उपाय न रहा।

जब किसी देश के सब समझदार आदमी यह तय कर लें कि हम भलाई ही देखेंगे तो फिर उस देश में बुराई इकट्ठी ही होती चली जायेगी, क्योंकि बदलेगा कौन ? जब दिखायी ही न पड़ेगी तो बदलेगा कौन ? तो हिन्दुस्तान ने अपने साधुओं को अलग खड़ा कर दिया। उन्होंने कहा, हम तो सबमें भला देखते हैं, हम तो बुरा देखते ही नहीं। तो फिर बुराई को बदला कैसे जाये ?

समझ लें कि सब डॉक्टर तय कर लें कि हम तो बीमारी देखते नहीं, हम तो सिर्फ स्वास्थ्य देखते हैं, तो फिर वह देश बीमार हो जायेगा। जब उस देश में बीमारी कोई देखेगा ही नहीं तो बीमारी न देखने से समाप्त थोड़े ही हो जायेगी। न देखने से और बढ़ेगी क्योंकि देखने से पकड़ी जा सकती थी, तोड़ी जा सकती थी, मिटायी जा सकती थी। लेकिन डॉक्टर सब भले आदमी हो जायें और कहें कि हम बुराई देखेंगे नहीं, हम बुरी चीज देखते ही नहीं। हम मरते आदमी में भी परम जीवन देखते हैं, हम तो कहते हैं कि यह तो बिल्कुल स्वस्थ है। वह कैंसर से सड़ रहा है और हम देखते हैं कितना स्वास्थ्य का आनन्द ले रहा है। हम तो बुराई देखते नहीं, हम तो साधु हैं। फिर कठिनाई हो जायेगी।

मेरी थोड़ी कठिनाई है, क्योंकि मैं जिन्दगी को ठीक-ठीक देखने का आग्रह करना चाहता हूं। न तो मैं यह कहता हूं

कि आप किसी को बुराई थोप दें, उससे भी अहंकार बढ़ेगा। न मैं यह कहता हूं कि आप जबर्दस्ती किसी पर भलाई थोपें, उससे भी अहंकार बढ़ेगा। मैं यह कहता हूं, जिन्दगी जैसी है, उसको वैसा देखने की कोशिश करें। लकीरें मत खीचें। जितनी जो लकीर है, उसको वैसा ही देख लें कि वे कितनी हैं। दूसरी लकीर खींचने की कोशिश मत करें।

और देखने का दूसरा सूत्र भी समझ लें कि जो दूसरों में देखें, वह अपने में भी देखें। जिन्दगी अलग-अलग नियम नहीं मानती। जिन्दगी के नियम एक हैं। अगर हम जिस भांति दूसरे में देखते हैं और जो नियम दूसरे के लिए बनाते हैं, वही नियम अपने लिए भी बना सकें तो जिन्दगी बहुत ऊपर उठती है। लेकिन हम सब दोहरे स्टैंडर्ड में जीते हैं। दोहरे मापदण्ड हो जाते हैं। दूसरों के लिए दूसरा मापदण्ड होता है, अपने लिए दूसरा मापदण्ड होता है।

अगर मैं क्रोध करता हूं तो मैं कहता हूं कि वह परिस्थिति की वजह से भूल हो गयी है। और अगर दूसरा क्रोध करता है तो वह पापी है, उसको नर्क जाना पड़ेगा। अगर मैं चोरी करता हूं तो कहता हूं, मजबूरी थी। घर में खाना न था, पत्नी बीमार पड़ी है, बच्चे रो रहे थे—मुझे चोरी करनी पड़ी। और अगर दूसरा चोरी करता है तो वह पापी है। दोहरे स्टैंडर्ड—दूसरे को और तराजू पर तौलते हैं, अपने को और तराजू पर तौलते हैं। दो तरह के बहीखाते नहीं हैं, दो तरह के एकाउंट्स नहीं हैं दुकानों में, आदमी के दिमाग में भी दोहरे बहीखाते हैं, दोहरे नियम हैं। दूसरे के लिए और हैं, अपने लिए और हैं। अपने को वह किसी और तराजू पर तौलता है दूसरे को और तराजू पर तौलता है। यह बेईमानी की हद है। यह अनैतिकता की हद है। मैं इसको बड़ी से बड़ी अनैतिकता, इम्मॉरिलिटी कहता हूं जब हम दोहरे मापदण्ड का

उपयोग करते हैं।

इकहरा मापदण्ड चाहिए। ठीक से जीवन को देखने वाला आदमी इकहरा मापदण्ड बनाता है। जिस तराजू पर अपने को तौलता है, उसी पर दूसरे को तौलता है। और ध्यान रहे जब भी कोई आदमी एक तराजू बनायेगा, बहुत करुणावान हो जायेगा; कठोर कभी भी नहीं रह सकता। दो तराजू बनायेगा तो कठोर हो जायेगा क्योंकि दूसरे को वह बिल्कुल पाप के तराजू पर तौल लेगा कि यह आदमी पापी है, नर्क में डालो, अदालत में घसीटो, सजाएं दो, फांसी लगाओ। लेकिन जब वह एक ही तराजू रखेगा तो समझेगा कि जब किसी को फांसी लग रही है तो वह सिर्फ इसीलिए लग रही है कि फंस गया है और मैं फंसा नहीं। इससे ज्यादा फर्क नहीं है। और जब वह देखेगा, जब कोई और ने पाप किया है तो वह यह समझेगा कि किसी और ने पाप किया है, उसका कुल कारण इतना है कि उसका पाप पकड़ गया है और मेरा पाप पकड़ नहीं पाया। अगर एक तराजू होगा तो हम जानेंगे कि हर अपराधी के साथ हम अपराधी हैं और हर पापी के साथ हम पापी हैं और हर बुरे आदमी के साथ हमारी बुराई का भी हिस्सा जुड़ा हुआ है। हम भी साथ में खड़े हुए हैं। तब हम इस भांति कण्डमनेशन, इस तरह की निन्दा में न लगेंगे कि लगा दो गोली, मार दो, आग लगाओ, नर्क में डालो। तब हम यह कहेंगे कि जो यह आदमी कर रहा है, जो इस आदमी से हो रहा है, वह हमसे भी हो रहा है। और तब हम सोचना शुरू करेंगे कि क्या उपाय बने, कैसे उपाय बने कि आदमी का समाज बदले, जिसमें मैं भी बदलूं और वह दूसरा भी बदले।

पुराने इतिहास का लम्बा काल दोहरे मापदण्ड का काल है, इसलिए मनुष्य नैतिक नहीं हो पाया। क्योंकि नैतिकता का मूल-बिन्दु करुणा ही, कम्पैशन ही आदमी में पैदा न हो

सका। आदमी कठोर हो गया। बड़े मजे की बात है, जिसको हम नैतिक कहते हैं वह कठोर हो गया है।

नैतिक आदमी बहुत ही कठोर होता है। नैतिक आदमी हद्द दर्जे की दुष्टता कर सकता है। लेकिन वह अपनी दुष्टता को भी नैतिकता का जामा पहना देता है। वह अपनी नैतिकता के लिए भी, अपनी कठोरता के लिए भी नैतिकता का करार देगा, उसको एकदम कठोरता का जामा पहना देगा। और चूंकि वह खुद भी अपने प्रति कठोर होता है इसलिए दूसरे के प्रति कठोर होने का लाइसेंस उसे मिल जाता है। अगर किसी को सताना हो तो सबसे सरल तरकीब यह है कि पहले अपने को सताना शुरू करो। अगर दूसरों से उपवास करवाना हो, भूखों मरना हो तो पहले उपवास खुद शुरू करो। अगर खुद उपवास करने की हिम्मत जुटा ली तो फिर आप किसी से भी उपवास करवाने की हिम्मत जुटा सकते हैं। जो न करें, वह पापी हो जायेंगे, वह निन्दित हो जायेंगे। अगर दूसरों को भी सिर के बल खड़ा करवाने की तकलीफ देनी है तो पहले खुद अभ्यास करके सिर के बल खड़े हो जाओ। फिर कोई आदमी यह न कह सकेगा कि यह आदमी कठोर है। बल्कि कोई भी आदमी यही कहेगा कि मैं बड़ा पापी हूं इसलिए शीर्षासन नहीं कर पा रहा हूं। आप बड़े पुण्यात्मा हैं, आप कर रहे हैं।

नैतिकता जिसे हम कहते रहे हैं, अब तक वह भी दूसरे को सताने की बड़ी गहरी व्यवस्था है। इसलिए घर में एक आदमी नैतिक हो जाये तो सारा घर परेशान हो जाता है। एक आदमी को नैतिकता का भूत चढ़ जाये तो घर भर की गर्दन दबा लेता है। इसलिए नैतिक आदमी बहुत गहरी हिंसा में उतर जाता है। लेकिन दिखायी नहीं पड़ती। और उसका सारा कारण कितना है? सारा कारण इतना है कि उस

सारी मनुष्यता की कमजोरी के साथ कभी अपने को एक साथ रख कर नहीं देख पाता, अपने को अलग रख लेता है। सारी मनुष्यता को अलग तराजू पर तौल देता है। जो व्यक्ति जीवन के सत्य की खोज में निकला हो उसे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम सब एक साथ ही तराजू पर तौले जायेंगे। हमारा पुण्यात्मा और हमारा पापी सब एक साथ खड़े हुए हैं। और जो बहुत गहरा देखेगा उसको यह भी पता चलेगा कि हमारा पुण्यात्मा और हमारे पापी अलग-अलग भी नहीं हैं, भीतर से जुड़े हुए हैं। बल्कि उसे यह भी दिखायी पड़ेगा कि हमारा पुण्यात्मा भी इसलिए पुण्यात्मा मालूम पड़ता है कि कोई पापी होने के लिए तैयार हो गया है। अगर रावण-रावण होने से इन्कार कर दे तो राम की कहानी एकदम विदा हो जाये, वह कहीं भी न रह जाये। वह रावण रावण होने को तैयार है इसलिए राम की कहानी प्रगट हो पाती है। और अगर जीवन के अन्त में कहीं कोई निर्णय होता हो तो उस निर्णय में राम की कहानी रावण के बिना अर्थहीन मालूम पड़ेगी और राम को महात्मा बनाने में रावण का हाथ भी अनिवार्य रूप से स्वीकार करना पड़ेगा। और रावण ने कितनी ही बुराइयां की हों, कम से कम एक तो बहुत बड़ा कार्य किया है कि राम को जन्म दे दिया है। और राम ने कितने ही अच्छे काम किये हों, एक बात तो पक्की है कि रावण को जन्म देने वाले वही हैं। इसलिए मैं यह कहता हूं कि महात्मा से महात्मा में पापी मिल जायेगा, पापी से पापी में महात्मा मिल जायेगा। ये चीजें टूटी हुई नहीं हैं, बहुत भीतर से जुड़ी हुई हैं।

आप एक नाटक देखने जाते हैं, तो आप देखते हैं कि नाटक में एक दुष्ट पात्र है, वह सता रहा है, सता रहा है, परेशान कर रहा है। वह चोरियां कर रहा है, वह स्त्रियों से

बलात्कार कर रहा है, वह बच्चों की गर्दन दबा रहा है, वह बहुत दुष्ट है, वह सब तरह के उपद्रव कर रहा है। आपका मन उसके प्रति बड़े चोट से भर जाता है। फिर एक अच्छा पात्र है, एक साधु है, संत है, महात्मा है। उस बुरे आदमी से बचाने के लिए सेवा कर रहा है। आसन बना रहा है, सब उपाय कर रहा है। आपका मन उसके प्रति बड़े आदर से भर गया है। फिर नाटक समाप्त हो जाता है। वह जिसने पापी का काम किया, जिसने पुण्यात्मा का काम किया, वे दोनों गले में हाथ डालकर पर्दे के पीछे से बाहर आते हैं। तब आप ऐसा नहीं कहते हैं उस बुरे आदमी से कि मारो इसको। तब आप उससे भी कहते कि बहुत अच्छा अभिनय किया। और तब आप उससे यह भी कहते हैं कि तुम न होते तो महात्मा का पार्ट उभर न पाता। और कौन कहता है कि जिन्दगी के पर्दे के बाहर राम और रावण गले में हाथ डालकर बैठकर चाय नहीं पी रहे हैं। लेकिन हम बहुत थोड़ी दूर तक देखते हैं। असल में जिन्दगी को हम पूरा नहीं समझ पाते क्योंकि जिन्दगी को हम एक बड़े नाटक की तरह नहीं देख पाते हैं।

मेरे पास, मैं अभी बम्बई से आया तो एक फिल्म अभिनेता मिलने आया। उसने मुझसे कहा कि मुझे कुछ आपसे अभिनय के बाबत पूछना है, और आपसे कैसे पूछूं, लेकिन किसी ने मुझे कहा है कि आप शायद कोई काम की बात कहें। मैं ठीक अभिनय कैसे करूं? उसने कहा कि बड़ी अजीब-सी बात आपसे पूछ रहा हूं, मुझे पता नहीं कि आप इसका उत्तर भी देंगे कि नहीं देंगे। मैंने उनसे कहा कि ठीक ही तुम पूछते हो। पूछना ही चाहिए। तो मैं तुम्हें एक सूत्र, मैंने उसे लिख-कर दे दिया। उसे मैंने एक सूत्र लिखकर दे दिया कि जिन्हें ठीक से जीवन जीना हो, उन्हें जीवन इस भांति जीना चाहिए जैसे वह अभिनय हो। और जिन्हें ठीक से अभिनय करना हो,

उन्हें अभिनय ऐसे करना चाहिए जैसे कि वह जीवन हो। अगर कोई व्यक्ति अभिनय ऐसे कर सके जैसे कि वह जीवन है, तो वह कुशल अभिनेता हो जायेगा। और अगर कोई व्यक्ति जीवन ऐसे जी सके कि वह अभिनय है तो वह सत्य का ज्ञाता हो जायेगा।

जीवन में प्रभु है, जीवन ही प्रभु है, यह हमें तभी पता चलेगा जब हम जीवन को भी एक अभिनय की तरह देख सकें। तब बुरे में भी उसके दर्शन हो जायेंगे, भले में भी उसके दर्शन हो जायेंगे। तब बुरे और भले से उसके दर्शन में बाधा नहीं पड़ेगी।

मैंने एक बहुत अद्‌भुत कहानी सुनी है। मैंने सुना है कि एक भिक्षु ने जाकर एक सम्राट से कहा कि सभी में ब्रह्म का आवास है। उस संन्यासी ने सम्राट को कहा, सभी में ब्रह्म का आवास है। और सम्राट बहुत अद्‌भुत था। उसने कहा, बात-चीत तो हम न करेंगे, लेकिन परीक्षा कर लेना चाहेंगे। उस भिक्षु ने कहा, बातचीत ही सब जगह होती है, ब्रह्म की चर्चा ही होती है। परीक्षा क्या होगी ब्रह्म की। सबमें ब्रह्म है, यह मैं तर्क से सिद्ध कर सकता हूं। राजा ने कहा, तर्क की हम चिन्ता नहीं करते। हम तो जीवन में प्रयोग करके देख लेना चाहते हैं। उस भिक्षु ने कहा प्रयोग कर लें। राजा के पास पागल हाथी था। उसने पागल हाथी छुड़वा दिया उस भिक्षु के ऊपर। राजधानी में लोग खड़े हो गये अपने-अपने महलों के ऊपर। बीच राजपथ खाली हो गया। पागल हाथी छूटा। वह भिक्षु भागा, वह चिल्लाया। पहले बहुत डरा। लेकिन सम्राट ने उससे कहा, अरे भूल गये। कहते थे, सभी में ब्रह्म है, तो पागल हाथी में ब्रह्म नहीं है? तब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। अपने ही तर्क कभी-कभी आदमी को बुरी तरह फंसा देते हैं। अब उसे बड़ी मुश्किल हुई।

उसने कहा, अब क्या करें? खड़ा हो गया आंख बन्द करके, हाथ-पैर कंपे जा रहे हैं। लेकिन वह खड़ा है, पागल हाथी ने आकर सूंड में उसे पकड़ लिया। महावत चिल्ला रहा है कि हट जा पागल, छोड़ अपनी जान को, कहां की बातों में पड़ा है। क्यों तू जिन्दगी गंवाता है, कह दे कि सब में ब्रह्म नहीं है; कम से कम पागल हाथी में मैं नहीं मानता। बाकी सबमें होगा। एक क्षण तो उसने भागना चाहा। लेकिन राजा ने कहा, क्या भूल गया? वह अपनी छत के ऊपर से चिल्ला रहा है कि भूल गया? सारा गांव हंसेगा, कहां गया ब्रह्मज्ञान? तब वह फिर रुक गया। महावत ने बहुत कहा, इन बातों में मत पड़, जान चली जायेगी। महावत की सुनता था तो भागने की कोशिश भी करता था और राजा चिल्लाता तो फिर खड़ा हो जाता। आखिर उस हाथी ने उसको पकड़ फेंक दिया दूर, दस बीस फीट दूर जाकर गिरा। हाथ-पैर टूट गये। उठाकर उसे ऊपर लाया गया। राजा उससे कहने लगा, क्या हुआ? उसने कहा, बड़ी मुश्किल में पड़ गया। जब आपकी बात सुनायी पड़ती थी तब खड़ा हो जाता था, क्योंकि अहंकार को चोट लगती थी कि अपनी ही बात गलत हुई जा रही है। महावत जब कहता था कि भाग जा तो सोचता था कि जान क्यों गंवानी है। जान के पीछे जान थोड़ी ही गंवानी पड़ेगी। वह दोनों की दुविधा में पड़ गया था। राजा ने उससे कहा, लेकिन हाथी में तुझे ब्रह्म दिखायी पड़ा कि नहीं? उसने कहा, बिल्कुल नहीं दिखायी पड़ा। दिखायी तो नहीं पड़ा, लेकिन देखने की मैंने कोशिश पूरी की, क्योंकि अगर बिल्कुल दिखायी न पड़ सके तब तो मैं भाग ही जाता। आंख बन्द कर ली थी इसीलिए। आंख खुले में तो पागल हाथी दिखायी पड़ता था। आंखें बन्द कर ली थी, किसी तरह ब्रह्म थोड़ी देर को भी दिखायी पड़ जाये तो जो हो, हो।

महावत ने कहा, लेकिन तुझे मुझमें ब्रह्म दिखायी न पड़ा ? कि मैं जो चिल्ला रहा था कि हट जा ? अगर पागल हाथी में ब्रह्म था तो मुझमें न था ? और छोड़ मेरी बात। हाथी की भी छोड़, राजा की भी छोड़। तेरे भीतर भी तो ब्रह्म था ? वह क्या कह रहा था ?

कम-से-कम उसकी तो तुम्हें सुन लेनी थी ? उस आदमी ने कहा, तब तो बड़ी भूल हो गयी। मेरा ब्रह्म तो पूरे वक्त कह रहा था कि भाग, वह पूरे समय कह रहा था कि भाग।

जिन्दगी बहुत जटिल है। पागल हाथी में भी ब्रह्म है, लेकिन वह पागल ब्रह्म है, यह जानना। नहीं तो पागल ब्रह्म से बहुत मुसीबत हो जायेगी। चोर में ब्रह्म है, लेकिन वह चोर ब्रह्म है, यह समझना। रावण में भी ब्रह्म है, लेकिन वह रावण का पार्ट अदा कर रहा है, यह भी जानना। जीवन अगर एक अभिनय दिखायी पड़े तो हम बुरे में भी ब्रह्म देख पायेंगे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम बुरे की पूजा करने लग जायें। इसका यह मतलब भी नहीं है कि कोई हम रावण के भक्त हो जायेंगे और रावण जैसा जीने लगेंगे। इसका यह मतलब भी नहीं है कि बुरा हमारे लिए भला और बुरे में कोई भेद न रह जायेगा। इसका केवल इतना मतलब है कि जिन्दगी तब हमें एक बोझ न मालूम पड़ेगी, गंभीरता न मालूम पड़ेगी। जिन्दगी एक खेल और एक लीला हो जायेगी।

और जिसे जीवन में ही प्रभु को देखना हो उसे जीवन को लीला बना लेना जरूरी है। सीरियस और गंभीर लोग जीवन में परमात्मा को कभी नहीं देख सकते।

लेकिन हमारा अनुभव उल्टा है। हम आमतौर से ऐसा ही समझते हैं कि जितनी गंभीर सूरतें हैं वे सभी भगवान को उपलब्ध हो गयी हैं। हम यह तो सोच ही नहीं सकते कि संत भी और हंस सकते हैं। हम सोच नहीं सकते। असल में संत

होने के लिए रोती हुई सूरत भी मिलना बहुत जरूरी चीज है। हम कल्पना ही नहीं कर सकते। अगर महावीर कहीं रास्ते पर पड़े हुए खिलखिलाते मिल जायें तो महावीर के भक्त एकदम भाग जायेंगे, वहां से कि कोई गलत आदमी है, महावीर हो ही नहीं सकते। महावीर और खिलखिला कर हंसते हों रास्ते पर ? असम्भव है ! बुद्ध किसी होटल में मिल जायें। हम कल्पना नहीं कर सकेंगे। हम विश्वास नहीं कर सकेंगे कि यह बुद्ध हो सकते हैं।

हम जिन्दगी को ऐसी कठोरता से लिए हैं कि जिन्दगी का हल्कापन वेटलेसनेस, जिन्दगी एक लीला है, एक अभिनय नहीं, का अनुभव कर ही नहीं पाते। जिन्दगी एक बड़ी गंभीरता की बात है। और गंभीरता एक रोग है। गम्भीरता एक बीमारी है। धार्मिक आदमी गंभीर नहीं है, धार्मिक आदमी इतना हल्का है, इतना हल्का-फुल्का है। इतना प्रसन्न, इतना प्रसन्न, इतना प्रफुल्लित है कि जीवन के सब रूपों के साथ नाच सकता है, हंस सकता है, उठ सकता है, बैठ सकता है। लेकिन अब तक की धार्मिक गम्भीरता की ही परम्परा है और इसलिए मैं कहता हूं कि इस धार्मिक परम्परा की वजह से सिर्फ रोते हुए, उदास लोग ही धार्मिक हो सके हैं, हंसते हुए, प्रसन्न लोगों को धार्मिक होने का मौका ही न रहा। वे तो निन्दित हो गये। वे कभी धार्मिक हो ही नहीं सकते।

यही वजह है कि मरने के करीब पहुंचते-पहुंचते लोग मंदिरों और मस्जिदों में जाना शुरू करते हैं क्योंकि तब तक हंसी व्यतीत हो गयी होती है। इसलिए मंदिरों और मस्जिदों में वृद्ध और वृद्धाओं के सिवाय कोई दिखायी नहीं पड़ता। जवान वहां नहीं दिखायी पड़ते, बच्चे भी वहां नहीं दिखायी पड़ते। बल्कि बच्चों को भी अगर ले जाते हैं मां-बाप तो मंदिरों में गंभीर बनाकर बिठा देते हैं कि बिल्कुल गंभीर बन-

कर बैठ जाओ। यह मंदिर है। तो बच्चों को बूढ़ा बनाकर बिठाल सकें तो ही मंदिरों में उनका प्रवेश है। मंदिर बड़े गंभीर होते हैं। गंभीरता रुग्ण है। प्रसन्नता, जीवन की सहजता, तो ही हम जीवन में परमात्मा को देख सकेंगे। गंभीर लोग न देख सकेंगे। गंभीर लोग इतने हल्के ही नहीं कि उतनी बड़ी उड़ान भर सकें; पत्थर की तरह वजनी होते हैं।

तो मेरे देखे फूल में गंभीरता नहीं है और न हवाओं में गंभीरता है और न वृक्षों में। और न पक्षियों की आवाजों में, और न आकाश के तारों में और न सूरज में। अगर हम सारे जगत् में खोजने चले जायें तो आदमी में कुछ आदमी मिल जायेंगे जो गंभीर और उदास और दुखी हैं। और भारी हैं, लेकिन जगत् में और विश्व में कहीं भी भारीपन नहीं मिलेगा। सारा जगत् एक नृत्य में डूबा हुआ है, एक प्रफुल्लता में डूबा हुआ है, एक रस में डूबा हुआ है।

यह भी सूत्र मैं आपको कहना चाहता हूं कि रस में विभोर हो सकेंगे, हल्के होकर जीवन के सब रूपों में तो शायद प्रभु का दर्शन हो सके सब तरफ। क्योंकि वह तो बहुत आनन्द रस में विभोर होकर नाच रहा है।

और हमने तय कर लिया है कि सिर्फ गम्भीर भगवान से मिलेंगे। और वह कहीं है नहीं। कहीं कोई गम्भीर भगवान नहीं है। लेकिन हमने तय कर लिया है कि गम्भीर भगवान की खोज करेंगे। और शायद इसलिए, हमने असली भगवान की फिक्र छोड़ दी है, और पत्थर की मूर्तियां मंदिरों में बनाकर रख ली हैं। क्योंकि पत्थर की मूर्तियों से ज्यादा गम्भीर और वजनी क्या होगा? मरा हुआ पत्थर की मूर्तियों से ज्यादा और क्या हो सकता है? इसमें जीवन का कोई अंकुर नहीं निकलता; इसमें कोई फूल नहीं खिलता; इसमें कोई हेर-फेर,

कोई बदल नहीं होती, एक मरा हुआ पत्थर पड़ा हुआ है। तो जिन्दा पत्थर को भी पूजते तो भी ठीक था उसमें भी कुछ भगवान हो सकता है जिन्दा से भी काम नहीं चलता। पहले खीला-हथौड़ी लेकर उसको मारना पड़ता है। जब उसकी सब जिन्दगी काट डालते हैं और हिसाब से ढाल लेते हैं। वह तो भगवान शायद इसीलिए बचा फिरता है आदमियों से कि अगर कहीं मिल जाये तो पता नहीं खीला-हथौड़ी लेकर काट-पीट डालें और किस शक्ल में उसको ढालकर मंदिर में बिठायें। क्योंकि हम उसको वैसा-का-वैसा कभी भी न स्वीकार कर सकेंगे। क्योंकि निश्चित वह हंसता होगा। अगर वह न हंसता होगा तो हंसी कहां से आती होगी? अगर वह नहीं हंसता है तो हंसी कहां से आती है? अगर वह नहीं गीत गाता है तो गीत कहां से जन्मते हैं। अगर वह प्रेम नहीं करता है तो प्रेम की इतनी बड़ी धारा इतनी बड़ी गंगा कैसे बहती। अगर फूलों में उसको कोई उत्सुकता नहीं तो फूल खिलते क्यों? वह तो बहुत आमोद में, वह तो बहुत रस में बन्द मालूम होता है। उसकी तो घड़ी-घड़ी नृत्य और नाच में डूबी हुई मालूम पड़ती है। हमें तो मिल जाये तो पहले तो हमें उसका नाच छीनना पड़े, हाथ-पैर बांध देने पड़ें।

लेकिन जिन्दा भगवान भरोसे का नहीं हो सकता। हम कहीं बिठायें, वह कहीं चला जाये। तो पत्थर में ही बांध देते हैं, वह बड़ा सुविधापूर्ण है। हम जहां बिठा देते हैं, फिर वहीं बैठा रहता है। कोई फर्क नहीं होता है। रोज जाते हैं, वहीं मिल जाता है जहां बिठाया था। कभी ऐसा नहीं होता है कि यहां-वहां हो जाये। फिर कभी गड़बड़ भी नहीं करता। हमने जैसा मान रखा है वैसा ही रहता है। उससे अन्यथा कभी नहीं होता। पत्थर के भगवान के प्रति हम प्रेडिक्ट कर सकते हैं, हम घोषणा कर सकते हैं कि वह ऐसा ही रहेगा। असली

भगवान के साथ कुछ भरोसा नहीं। कि हम उसे एक मंदिर में गम्भीर खड़ा करके लौटें और सुबह जब जायें तब वह नाच रहा हो। अन्प्रडिक्टेबल होगा। असल में सभी जिन्दा चीजें अन्प्रडिक्टेबल हैं; जिन्दा चीजों के बाबत घोषणा हो सकती है, भविष्यवाणी नहीं हो सकती है। इसलिए मुर्दों के सिवाय ज्योतिषी किसी के सम्बन्ध में कुछ नहीं बता सकता। जो बिल्कुल मरे-मराये लोग हैं, उन्हीं के सम्बन्ध में ज्योतिषी कुछ बता सकता है। जिन्दों के बाबत ज्योतिष कुछ नहीं बता सकता। जिन्दा आदमी हाथ की सब रेखाएं गलत कर दे सकता है।

मैंने सुना है कि बुद्ध एक गांव के पास से गुजरे थे, एक नदी के किनारे। दोपहर थी भरी, धूप थी तेज। नदी की रेत पर उनके पैर के चिन्ह बन गये। पीछे काशी से बारह वर्ष ज्योतिष का अध्ययन करके एक पंडित लौटता था। बड़ी किताबें, ग्रन्थ ज्योतिष की साथ में थीं। पंडितों के पास सिवाय ग्रन्थों के और कुछ है भी नहीं जीवन में। पंडित बड़े दीन हैं कि उनके पास कागज की किताबों के सिवाय कुछ भी नहीं है। अपना बोझ लिए चला आता था। बारह साल मेहनत की थी ज्योतिष में। असल में लोग फिजूल की चीजों में इतनी मेहनत करते हैं कि अगर ठीक चीजों में उतनी मेहनत करें तो कभी को परम को उपलब्ध हो जायें। बारह साल ज्योतिष सीखने में गंवाये।

अब वह लौट रहा था। वहां देखा, पैर के चिन्ह पड़े रेत पर, चौंक गया। क्योंकि पैरों में वह चिन्ह था जिनको देखकर ज्योतिष के शास्त्र कहते हैं कि इस आदमी को चक्रवर्ती सम्राट होना चाहिए। भरी दोपहरी में, छोटे से गांव में, साधारण सी नदी की रेत पर चक्रवर्ती राजा नंगे पैर चलेगा? उसने कहा कि कुछ गड़बड़ हो गयी है। चक्रवर्ती और एक

साधारण से गांव में? और इस गंदी-सी नदी की रेत में? और नंगे पैर, और भरी दोपहरी में? तो अगर चक्रवर्ती ऐसा घूम रहा हो तो इन किताबों को नदी में डुबाकर, बारह साल व्यर्थ गये, सोचकर घर लौट जाना चाहता था। पर उसने सोचा कि जरा खोज तो लें कि चक्रवर्ती आसपास ही में हो कहीं। क्योंकि पैर के निशान इतने ताजे हैं कि अभी-अभी ही गुजरा होगा। वह पैरों के पीछे-पीछे चल कर गया। एक वृक्ष की छाया में बुद्ध विश्राम करते थे। आंख बन्द की, पैर थे टिके तो उसने पैरों के पास जाकर देखा कि यह आदमी बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने भिक्षा का पात्र रखा है, चक्रवर्ती होने का सवाल नहीं। देखा भिक्षु है, फटे कपड़े पहने हुए है। लेकिन चेहरा तो चक्रवर्ती का ही मालूम पड़ता है। जगाया और कहा कि मुश्किल में डाल दिया है। बारह साल की मेहनत पानी हुई जाती है? आप हैं कौन, यहां क्या कर रहे हैं? आपके पैर के चिन्ह तो कहते हैं, चक्रवर्ती सम्राट हो। तो इस भरी दोपहरी में, इस साधारण से गरीब गांव की नदी की रेत पर यहां किसलिए आये हो? साथी कहां हैं, संगी कहां हैं, दरबारी कहां हैं? अकेले इस वृक्ष के नीचे क्या कर रहे हो? फटे पुराने कपड़े क्यों पहने हो? यह क्या नाटक है? यह भिक्षा का पात्र क्यों लिए हो?

बुद्ध ने कहा, मैं तो भिक्षु ही हूं। उसने कहा, मेरी किताबों का क्या होगा? नदी में फेंक दूं? बारह साल मेहनत बेकार गयी? बुद्ध ने कहा, नहीं, किताबें काम पड़ेंगी। किताबें ले जाओ। बहुत मरे हुए लोग हैं जिनके चिन्ह मिलाओगे तो मिल जायेंगे। लेकिन जिन्दा आदमी पर रेखाएं नहीं बनतीं। जिन्दगी पर कोई बन्धन नहीं है। जिन्दगी निर्बन्ध है, जिन्दगी मुक्त है। इसीलिए प्रिडिकशन नहीं हो पाता, भविष्यवाणी नहीं हो पाती।

जितना जीवन्त व्यक्ति होगा, उसके कल के बाबत कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कल वह क्या कहेगा, क्या करेगा, कैसे उठेगा, कैसे जियेगा, कुछ नहीं कहा जा सकता। हां, जितना मरा हुआ आदमी है, कल के बाबत कहा जा सकता है कि कल वह सुबह उठकर यह करेगा, यह बोलेगा। पत्नी से लड़ेगा, बाजार जायेगा, दुकान चलायेगा, सांझ को लौटेगा, बेटे को डांटेगा कि पढ़ाई ठीक से नहीं की, परीक्षा नहीं दी। रात झंझट और कुछ करेगा। रात सो जायेगा। सुबह फिर उठेगा, सब बताया जा सकता है।

इसलिए हमने पत्थर के परमात्मा बनाकर रखे हुए हैं। वे असली परमात्मा से बचने के लिए हैं। क्योंकि असली परमात्मा के बाबत कुछ भी भरोसा नहीं है, रिलायबल नहीं है। असली परमात्मा भरोसे योग्य नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि जब सभी में परमात्मा है तो फिर मंदिर में मूर्ति की पूजा करें तो आपको एतराज क्या है ?

मैंने कहा सभी में परमात्मा, उनको मंदिर की मूर्ति फौरन याद आ गयी। हम उसकी पूजा करें तो एतराज क्या ? अगर सभी में परमात्मा है, यह समझ में आ गया तो मंदिर की मूर्ति का सवाल ही नहीं रह जाता। मंदिर की मूर्ति का सवाल तभी तक है जब तक सभी में परमात्मा नहीं है तब तक मंदिर की मूर्ति में परमात्मा देखने की चेष्टा चलती है। जिस दिन सभी में दिख गया तो फिर कौन मंदिर की मूर्ति है। और कौन मंदिर के बाहर है ? कौन मंदिर की मूर्ति है, और मंदिर की मूर्ति नहीं है ? फिर कैसे पता चलेगा। फिर कैसे पक्का करोगे कि दरवाजे पर जो भिखारी बैठा है। वह मंदिर की मूर्ति नहीं है। और मंदिर के भीतर जो पत्थर की मूर्ति रखी है, वह भगवान है। नहीं, फिर उपाय नहीं है। लेकिन मंदिर की मूर्ति सबस्टीट्यूट इसलिए खतरनाक है। मैं

कहता हूं, मत करना मंदिर की मूर्ति की पूजा। इसलिए नहीं कि उसमें परमात्मा नहीं है। परमात्मा तो सब जगह है। लेकिन मंदिर की मूर्ति उन्होंने ईजाद की है जो सब तरफ से परमात्मा से बचना चाहते हैं। उन्होंने इसको ईजाद किया है।

अधार्मिक लोगों ने मंदिर की मूर्ति ईजाद की है। परमात्मा के शत्रुओं ने मंदिर की मूर्ति ईजाद की है। ताकि जीवन्त परमात्मा से बचा जा सके। और एक मरे हुए ढांचे में, ढले हुए हाथ से अपने हाथ से बनाये हुए भगवान के सामने हाथ जोड़कर घुटने टेककर बैठा जा सके। अगर दुनिया में कहीं पृथ्वी के बाहर और भी लोग हैं और हमें देखते होंगे अपनी ही ढाली गयी, अपनी ही बनायी गयी मूर्तियों के सामने घुटने टेके तो बहुत हंसते होंगे कि पृथ्वी के आदमी पागल मालूम होते हैं।

छोटे बच्चों पर हम नाराज होते हैं और छोटे बच्चों को हम नासमझ कहते हैं, क्योंकि वे गुड्डे गुड्डियों के विवाह रचाते हैं, और जब हम रामचन्द्र जी की बरात निकालते हैं तो बड़े बुद्धिमान हो जाते हैं ! हम जरा बड़े गुड्डा-गुड्डी बनाते हैं तो हम बहुत बुद्धिमान हैं, हम बचकाने नहीं हैं और छोटे बच्चे, बचकाने हैं ! वह बच्चे हैं, इसलिए गुड्डे-गुड्डी का विवाह रचा रहे हैं। और छोटी लड़कियां गुड्डियों को रखकर सुला रही हैं, बच्चे को नहीं। हम उन पर हंसते हैं, बच्चे हैं, थोड़े दिन में बड़े हो जायेंगे फिर छोड़ देंगे ये ना-समझियां। लेकिन, बड़े बच्चे जो हैं, वे भी छोटे नहीं हैं, उनसे बड़ी आशा नहीं बंधती। बड़े बच्चे बड़ी गुड्डियां बनायेंगे, छोटे बच्चे छोटी गुड्डियां बनायेंगे। छोटे बच्चों की गुड्डियां बड़ी सस्ती हैं, बड़े बच्चों की गुड्डियां बहुत मंहगी हैं। इतनी मंहगी हैं कि आदमी मर जाते हैं गुड्डियां के पीछे। रामचन्द्रजी

का हाथ कोई तोड़ दे, दस–पचास मुसलमानों को मारना पड़ेगा। मस्जिद की दीवार कोई गिरा दे तो सौ-पचास हिन्दुओं को मारना पड़े। बड़ी मंहगी ईंटें हैं इन मंदिरों और मस्जिदों की। इनमें खून ही खून लगा है आदमी का। और ये मूर्तियां, जिनको आप भगवान कह रहे हैं, ये भी बड़ी मंहगी हैं। इनके नीचे कब्रें बिछी हैं आदमी की। लाशें पड़ी हैं आदमी की, और उनकी पूजा चली जा रही है।

मैं नहीं कहता हूं कि वहां भगवान नहीं है। क्योंकि जब भगवान सभी में है तो मूर्ति भर को छोड़कर कैसे बचेगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मेरी बार ठीक समझ लेना। जिन्होंने मूर्ति ईजाद की है उन्होंने इसीलिए की है कि ताकि वह सबमें न दिखायी पड़े। इधर मरे-मराये को पकड़ा दें, इसको ही पूजते रहें। फिर और सुविधा है। मरे-मराये भगवान का ही पुजारी हो सकता है। जिन्दा भगवान का कोई पुजारी नहीं हो सकता। जिन्दा भगवान से सीधा सम्बन्ध करना होगा। मरे हुए भगवान में बीच में एक एजेन्ट होगा। क्योंकि मरे भगवान खुद तो बोल नहीं सकते। एजेन्ट से बोलेंगे। मरे भगवान खुद तो कुछ कर नहीं सकते। भोग लगेगा मरे भगवान को, भोग लेगा पुजारी। तो मरा भगवान पुजारी को बीच में खड़े होने का अवसर देता है इसलिए पुजारी मरे भगवान में बहुत उत्सुक है, जीवित भगवान में उसकी कोई उत्सुकता नहीं है। बल्कि मरे भगवान के लिए जीवित भगवान की वे हत्या करवा सकते हैं, उसकी उन्हें कोई तकलीफ नहीं है।

सारे हिन्दु-मुस्लिम, सारे ईसाई, सारे जैन सारी दुनिया में ऐसी गंवारियां, ऐसी बेवकूफियां करते हैं। सोच कर हैरानी होती है कि ये धार्मिक लोग हैं? और जो यह आदमी को छुरा भोंक दें, इनको जब आदमी में भगवान नहीं दिखता, इतना जीवन, उनको पत्थर की मूर्ति में दिखता होगा, यह विश्वास नहीं आ

रहा है। जिनको आदमी में नहीं दिखता, वे कहते हैं आदमी मुसलमान है। आदमी में भगवान नहीं दिखता है। आदमी हिन्दू है। पत्थर में उन्हें भगवान दिख जाता है। पत्थर में भगवान दिख जाता है। हो सकता है किसी मुसलमान कारीगर ने ही भगवान खोदा हो और अक्सर ऐसा ही होता है कि सब कारीगर अधिकतर मुसलमान हैं। जो पत्थर खोदते हैं। वह मुसलमान कारीगर ने पत्थर खोदा, वह भगवान हो गया। और मुसलमान की छाती पर भोंक सकते हैं छुरे और आग लगा सकते हैं।

धर्म के नाम पर जो अब तक चला है उसे बचाने की अब आगे जरूरत नहीं है। उसके लिए आयें मत खोजें। वह जो पूछा है मित्र ने, जब सभी में भगवान है तब तो फिर मूर्ति में भी भगवान हो गया। तो अगर हम मूर्ति की पूजा करें, आपको एतराज क्या है?

बहुत एतराज है। एतराज बहुत है। और एतराज यही है कि जब तक वह मूर्ति पकड़ी रहेगी तब तक वह सबमें दिखायी नहीं पड़ेगा। और एक दफे सबमें दिख जाने दें, फिर मूर्ति में भी होगा। लेकिन पूजा की क्या जरूरत रह जायेगी। कौन पूजेगा, किसको पूजेगा? जब सबमें ही दिखायी पड़ जायेगा।

एकनाथ लौटते थे काशी से और सारे मित्र साथ थे। तो पानी लेकर जा रहे हैं रामेश्वरम् चढ़ाने। बीच में एक मरुस्थल पड़ा और एक प्यासा गधा पड़ा था। गधे में और भगवान हो सकते हैं? कभी नहीं हो सकते। गधे में कोई भगवान होता है?

अभी पहले किताबों में हुआ करता था ग गणेशजी का, तो कुछ किताबों में लोगों ने लिख दिया, ग गधे का। धार्मिक लोगों ने बड़ा विरोध किया कि यह तो बड़ी गलत बात है। ग गणेश जी का ही होना चाहिए, ग गधे का कैसे हो सकता

है ? गधा कहीं भगवान हो सकता है ? अब मजा यह है कि गणेश जी बिल्कुल मरे हुए हैं और गधा बहुत जिन्दा है। जब मरे-मराये गणेशजी में हो सकते हैं तो गधे में क्यों नहीं हो सकते ?

एकनाथ की मित्र मण्डली जा रही है। वह गधा प्यासा तड़फ रहा है। रेगिस्तान है पास पानी नहीं है। लेकिन वह भगवान के पुजारी काशी से पानी लेकर रामेश्वरम् चले जा रहे हैं। बड़े भक्त हैं, पक्के भक्त मालूम होते हैं। इतनी लम्बी यात्रा कर रहे हैं। नासमझियों में कष्ट उठाने से कोई भक्त नहीं हो जाता। सिर्फ बुद्धिहीन सिद्ध होता है। पहला तो यही पागलपन है कि काशी का पानी काशी में ही ठीक है, रामेश्वरम् का रामेश्वरम् में। तुम यह परेशानी क्यों कर रहे हो ? कि तुम काशी से भर कर और रामेश्वरम् ले जा रहे हो। और जो भगवान वहां पानी गिरा रहा है वह रामेश्वरम् में भी काफी गिरा रहा है वहां कोई कमी नहीं है। और तुम्हारे एक तम्बू से वहां कुछ बढ़ती हो जाने वाली नहीं है। लेकिन बुद्धिहीनता धर्म के नाम से चल रही है। और वह बड़ा कष्ट उठा रहे हैं, गांव-गांव में उनका स्वागत हो रहा है, उन्हीं तरह के बुद्धिहीन वहां भी इकट्ठे हैं। वे कह रहे हैं, ये बहुत बड़ा कार्य कर रहे हैं। ये तीर्थयात्रा से लौट रहे हैं, ये तीर्थ-यात्रा पर जा रहे हैं। कौन-सी तीर्थयात्रा हो गयी ? वह पड़ा है गधा और प्यास से चिल्ला रहा है। एकनाथ भी उस मण्डली में हैं। उन्होंने अपना वह जो कमण्डल भर कर लाये थे वह गधे को पिला दिया। सारी मण्डली टूट पड़ी कि तुम बड़े अधार्मिक हो, पागल हो गये हो ? यह तो रामेश्वरम् के भगवान के लिए लाये थे। एकनाथ ने कहा, रामेश्वरम् के भगवान पता नहीं प्यासे होंगे या नहीं। और होंगे तो वहां हम और पानी भर लेंगे। लेकिन ये भगवान बहुत प्यासे हैं।

एकनाथ को मण्डली ने अलग किया कि हटो तुम अलग, नास्तिक मालूम होते हो। धार्मिक नहीं मालूम होते हो। गधे में भगवान है ?

यह जो जीवन हमारे चारों तरफ फैला है उसमें हमें दिखायी नहीं पड़ते हैं और एक पत्थर की मूर्ति हम बाजार से खरीदकर लाते हैं, उसमें हमें दिखायी पड़ जाते हैं ? सम्भव नहीं दिखता है। गणित उल्टा मालूम होता है। हां, जिस दिन सबमें दिख जायेंगे, उस दिन उस पत्थर में भी दिख जायेंगे। लेकिन सबमें तो नहीं दिखायी पड़ रहे हैं। वे मेरे मित्र पूछते हैं कि सबमें आप मानते हैं ? मैं मानता नहीं हूं। मानने की जरूरत ही नहीं है। सबमें हैं। इसकी देखने की जरूरत है, मानने की जरूरत नहीं है।

यह अंतिम बात और। एक सूत्र आपसे कहूं, जो मान लेगा कि सबमें है, वह कभी न जान पायेगा। मान लेना बाधा बनेगी, मान लेने का कोई मतलब नहीं है। मानने की क्या जरूरत है। अगर दिखते हों तो ठीक, न दिखते हों तो ठीक। कम से कम सचाई की घोषणा तो करनी चाहिए ? कि मुझे नहीं दिखे।

एक फकीर हुआ सरमद। इस्लाम में पवित्र मंत्र की तरह यह बात कही जाती है, एक ही अल्लाह है, और कोई अल्लाह नहीं है। एक ही ईश्वर है, और कोई ईश्वर नहीं। लेकिन वह जो सरमद था वह आधा हिस्सा कहता था। वह पूरा नहीं कहता था। वह कहता था—कोई ईश्वर नहीं है। पहला हिस्सा है, एक ही ईश्वर है। उसके सिवाय कोई ईश्वर नहीं है। वह सरमद आखिरी का टुकड़ा ही कहता था। वह कहता था, कोई ईश्वर नहीं। उसको औरंगजेब ने बुलवाया और उससे कहा कि मैंने सुना है कि तुम बड़ी अधार्मिक बातें कहते हो। हमने सुना है, तुम कहते हो, कोई ईश्वर नहीं है ?

उसने कहा, अभी हम इतना ही जान पाये। हम जितना जान पाये हैं उतना ही कहेंगे, उससे ज्यादा हम कैसे कहें? हम कैसे कहें कि एक ही ईश्वर है। हमने देखा ही नहीं, हमने जाना ही नहीं। अभी तो हम इतना ही जान पाये हैं कि कोई ईश्वर नहीं, बहुत खोजा, कहीं ईश्वर नहीं दिखायी पड़ा। औरंगजेब ने कहा, यह नास्तिक है, इसकी हत्या कर देनी चाहिए। औरंगजेब ने कहा, इतना कह देने में तुम्हारा क्या बिगड़ता है। उसने कहा, बहुत बिगड़ता है। क्योंकि भगवान की खोज में निकले हैं हम, और अगर झूठ से शुरुआत की तो सत्य तक कैसे पहुंचेंगे? खोज में निकला हूं कि है कहीं ईश्वर? अभी इतना ही जान पाया कि कहीं नहीं है। जिस दिन जान लूंगा कि है उस दिन कहूंगा। उसके पहले नहीं कहूंगा। आखिर बहुत समझाने-बुझाने का कोई परिणाम नहीं हुआ। वह राजी न हुआ यह बात कहने को। उसने कहा, झूठ मैं कैसे कहूं? मुझे दिखे, तुम्हें दिखता होगा, तुम कहते हो। मुझे नहीं दिख रहा है।

आखिर उसकी गर्दन काट डाली गयी। बड़ी अद्‌भुत कहानी है बहुत अद्‌भुत कहानी है। पता नहीं कैसे घटी। गर्दन उसकी काटी गयी। जैसे ही उसकी गर्दन गिरी, कहते हैं, और कोई एक लाख आदमी इकट्ठे थे देखने को। आंखों के गवाह इतने मौजूद थे। जैसे ही उसकी गर्दन कटी, उसने कहा, एक ही ईश्वर है, और कोई ईश्वर नहीं। तो लोगों ने कहा, पागल, पहले क्यों नहीं कह दिया? उसने कहा, तब तक नहीं दिखायी पड़ा था तो कैसे कहता? अब दिख गया, कहता हूं।

कटी हुई गर्दन ने पता नहीं कहा कि नहीं, लेकिन कटी हुई गर्दन से यह आवाज है। सरमद ने कहा, अब दिखायी पड़ गया। उसकी गर्दन लुढ़कती है मस्जिद पर, जिस पर वह काटा गया है। सीढ़ियों पर लहू के निशान और उसकी गर्दन

लुढ़कती आती है। और भीड़ उससे पूछती है, कि अब क्यों दिख गया? उसने कहा, तब तक सरमद था, इसलिए दिखायी नहीं पड़ा। अब सरमद कट गया तो दिखायी पड़ गया। और मैं कहता हूं, एक ही ईश्वर है, और कोई ईश्वर नहीं।

यह आपसे मैं नहीं कहता कि आप मान लें कि ईश्वर सबमें है, जीवन ईश्वर है। यह मैं नहीं कहता हूं कि आप मान लें। आप मान लेंगे तो झूठ में पड़ जायेंगे। ऐसे झूठ में कभी मत पड़ना। ऐसे झूठ में काफी पड़े हुए हैं। ईश्वर तक के सम्बन्ध में हमने झूठ ईजाद कर लिए हैं। जो मुझे पता है, उससे ज्यादा कभी नहीं है, उससे ज्यादा मानने की कोई जरूरत नहीं है। कौन कहता है कि उससे ज्यादा मानें? अभी इतना ही मानें कि मुझे पता नहीं है, अच्छा है। इतनी सचाई काफी है। इतनी सचाई यात्रा के लिए काफी पाथेय है, इसको लेकर यात्रा हो जायेगी। इतना बहुत है। इतनी ईमानदारी काफी है कि मुझे पता नहीं; मुझे तो वृक्ष दिखायी पड़ता है, मुझे ईश्वर दिखायी नहीं पड़ता। नहीं दिखायी पड़ता है तो बहुत अच्छा है, वृक्ष भी क्या खराब है। वृक्ष भी काफी अच्छा है न दिखायी पड़े ईश्वर तो वृक्ष को ही देखें अभी कुछ दिन। जल्दी क्या है।

लेकिन मैं कहता हूं, वृक्ष को गहरे देखेंगे तो ईश्वर दिखायी पड़ जायेगा। लेकिन और गहरे, और गहरे और गहरे। लेकिन सचाई गहरे में जा सकती है, झूठ नहीं गहरे में जा सकता है। सब विश्वास झूठे हैं; सब बिलीफ झूठी हैं; सब मान्यताएं झूठी हैं। सब पकड़े हुए शास्त्र, चूंकि हमारे अनुभव से नहीं आते हैं; हमारे लिए बिल्कुल झूठे हैं। और उनको पकड़कर हम बैठे हैं इसलिए सत्य की कोई यात्रा नहीं हो पाती है।

मैं तो कहता हूं, जिसे आस्तिक होना हो, उसे नास्तिक होना ही पड़ता है। जिसे परम आस्तिक होना हो उसे परम

नास्तिकता तक जाना पड़ता है। जिसे हां भरना हो किसी दिन पूरे प्राणों से, उसे पूरे प्राणों से एक दिन 'नहीं' भी कहना पड़ती है। लेकिन हम 'हां' कहने में ऐसे लोलुप हैं कि 'नहीं' कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते और 'हां' कह देते हैं। हमारी 'हां' नपुंसक होती है। जो आदमी 'ना' नहीं कह सकता उसकी 'हां' का कोई मतलब नहीं है। इसलिए जो आदमी 'हां' कहने की हिम्मत जुटाना चाहता हो उसे 'ना' कहने की हिम्मत पहले जुटा लेनी चाहिए। लेकिन इतना पक्का है, हमारी 'ना' से वह 'ना' नहीं हो जाता। वह है, तो हमारी 'ना' भी टूट जायेगी और नहीं है तो ठीक है, हमारी 'ना' ठीक रहेगी। इतना मैं कहता हूं कि 'ना' कहने वाला अगर हिम्मत से 'ना' कहे तो वह परमात्मा की आंखों में एक जगह बना लेता है। नास्तिक की एक जगह है, झूठे आस्तिक की कोई भी जगह नहीं है। जो आदमी कहता है, मुझे नहीं दिखायी पड़ता, वह भगवान भी सामने खड़ा हो जाये तो वह कहेगा, अभी मुझे दिखायी नहीं पड़ता है तो मैं कैसे हां कह दूं।

भगवान झूठ के लिए किसी को मजबूर कर सकता है? नहीं, नास्तिकों की उसके हृदय में एक जगह है, क्योंकि कम से कम वे सच्चे तो हैं। इतना तो कहते हैं—हमें नहीं मालूम पड़ता। लेकिन जो कहता है—हमें मालूम नहीं पड़ता, वह खोज पर निकल जाता है। क्योंकि न मालूम पड़ने पर कोई भी कभी रुक नहीं सकता। 'न' पर कभी कोई ठहर सकता है? 'न' कभी मंजिल नहीं हो सकती। मंजिल तो 'हां' ही हो सकती है। न में तो पीड़ा बनी ही रहेगी। तो और खोजो, पता नहीं और आगे हो। और आगे हो, और आगे हो। खोजते खोजते 'ना' गिर जाता है और 'हां' आ जाता है। लेकिन यह मान्यता की बात नहीं है, यह जानने की ही जरूरत

है। और जानने का उपाय है, जानने का मार्ग है। उसे ही मैं ध्यान कहता हूं।

कल सुबह हम उस मार्ग पर फिर प्रवेश करेंगे कि हम उसे कैसे जान सकते हैं। सुबह साढ़े आठ बजे जो मित्र आते हैं, आ जायें। आज की रात की बात पूरी हुई। सबके भीतर बैठे परमात्मा को अन्त में प्रणाम करता हूं।

साधना-शिविर, जूनागढ़, दिनांक ११ दिसम्बर १९६९, रात्रि

५. जीवन ही है प्रभु

मेरे प्रिय आत्मन,

जीवन ही है प्रभु, इस सम्बन्ध में और बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं।

एक मित्र ने पूछा है—बुराई को मिटाने के लिए, अशुभ को मिटाने के लिए, पाप को मिटाने के लिए विधायक मार्ग क्या है ? पॉजिटिव रास्ता क्या है ? क्या ध्यान और आत्म-लीनता में जाने से बुराई मिट सकेगी ? ध्यान और आत्म-लीनता तो एक तरह का पलायन, एस्केप है, जिन्दगी से भागना है। ऐसा कोई मार्ग, विधायक, सृजनात्मक, जो भागना न सिखाता हो, जीना सिखाता हो, उस सम्बन्ध में कुछ कहें ?

पहली तो बात यह है कि ध्यान पलायन नहीं है और आत्म-लीनता पलायन नहीं है। बल्कि, जो आत्मा से बचकर और सब तरह भाग रहे हैं वे पलायन में हैं। जो मेरे निकटतम है उसे जानने से बचने की कोशिश एस्केप है। हम अपने से ही बचने के लिए भाग रहे हैं। और मजा यह है कि भागने वालों की यह भीड़, अगर कोई अपने को जानने जाता है तो उससे कहते हैं, तुम जिन्दगी से भागते हो। जिन्दगी अपने से अति-रिक्त और कहां से प्रारम्भ हो सकती है ? जिन्दगी का पहला कदम तो आत्मज्ञान ही होगा। मेरी जिन्दगी दूसरे से शुरू नहीं होगी। मेरी जिन्दगी मुझसे शुरू होगी। गंगा निकलेगी तो गंगोत्री से। वह किसी और नदी के उद्‌गम से नहीं निकल

सकती है। उसे गंगोत्री से निकलना पड़ेगा।

मेरी जिन्दगी मेरे भीतर से बाहर की तरफ जायेगी। मेरी जिन्दगी मुझसे बहेगी और फैलेगी। और अगर मैं अपने से ही जानने को वंचित रह जाता हूं तो मैं जिन्दगी को जानने से भी वंचित रह जाता हूं।

इसलिए जो लोग यह कहते हैं कि आत्मज्ञान की दिशा में जानने वाले लोग एस्केपिस्ट हैं, पलायनवादी हैं, वे बिल्कुल ही गलत बात कहते हैं। असल में पलायनवादी हम सब हैं। आत्मा से बचने के लिए और न मालूम कहां-कहां जा रहे हैं। कोई शराब खोज रहा है कि अपने को भूल जाये। कोई संगीत खोज रहा है कि अपनी याद न आये। कोई सेक्स खोज रहा है; कोई सिनेमा खोज रहा है; कोई क्रिकेट का मैच देख रहा है; कोई हाकी-फुटबाल का मैच देख रहा है; कोई मित्रों को खोज रहा है; कोई जुए को खोज रहा है; कोई धन्धे को खोज रहा है. कोई राजनीति को खोज रहा है—ताकि अपना पता न लगे। किसी भांति हम अपने को भूले हुए जी लें।

इसलिए अकेला होना बहुत कठिन हो जाता है। अगर आदमी-अकेला हो जाये तो उसी अखबार को फिर से पढ़ने लग्ता है जिसे दो बार पहले पढ़ चुका होता है। अकेला हो तो रेडियो खोल लेता है। अकेला हो तो उन्हीं बातों को करने लगता है, जिन्हें जिन्दगी भर न मालूम कितनी बार कर चुका है जिन्हें करने से कुछ मतलब नहीं। आदमी अकेले होने से डरता है कि अपना आमना-सामना न हो जाये। जितने हम अपने से डरते हैं, उतना हम किसी से भी नहीं डरते हैं। और जितने हम अपने से नाराज हैं और अपने से घृणा करते हैं, उतनी घृणा हम किसी को भी नहीं करते। अगर मैं एक घण्टे अकेला छूट जाऊं तो मैं लोगों से कहता हूं, घण्टा भर अकेला था, बहुत ऊब गया। इसका क्या मतलब है ? इसका

मतलब है, अपने साथ घण्टे भर रहना भी उबाने वाला है, और अपने साथ ही जब घण्टे भर रहकर मैं ऊब जाता हूं तो किसके साथ कितनी देर रह पाऊंगा और ऊब न जाऊं।

और बहुत मजे की बात है कि आप भी अकेले में ऊब जाते हैं अपने साथ, मैं भी अकेले में ऊब जाता हूं अपने साथ। हम दोनों मिलकर एक-दूसरे की ऊब दूर करने की कोशिश करते हैं। दोनों ऊबे हुए हैं। अपने से ही ऊबे हुए हैं, एक दूसरे की ऊब दूर करने की कोशिश में लगे हुए हैं, जैसे दो भिखारी रास्ते पर मिल गये हों और दोनों ने अपने-अपने भिक्षा पात्र एक-दूसरे के सामने कर दिये हों कि कुछ मिल जाये। वे दोनों ही भीख मांगने निकले हैं। पत्नी पति के साथ रहकर सोचती है कि साथ में आनन्द मिल जायेगा, पति पत्नी के साथ सोचता है, आनन्द मिल जायेगा, और दोनों अकेले रहकर दुखी हो जाते हैं। जब दोनों अकेले होकर दुखी हैं तो दोनों मिलकर दुगुने दुखी हो सकते हैं, और कुछ भी नहीं हो सकते हैं। क्योंकि मैं वही दे सकता हूं जो मेरे पास है। मैं वही बांट सकता हूं जो मैं हूं। लेकिन हम अपने से भागे हुए लोग हैं। लेकिन हमारी भीड़ है और भीड़ को एक सुविधा है कि वह जो कहे वह मानने, प्रतीत होने लगे। सारी भीड़ भागी हुई है। इसलिए जो अपनी तरफ लौट रहा हो, लगता है, एस्केप कर रहा है, पलायन कर रहा है, जिन्दगी से भाग रहा है।

सच तो यह है कि जिन्दगी अगर खोजनी हो तो पहले तो अपने घर जाना होगा। वहीं से यात्रा शुरू हो सकती है जीवन के आनन्द की। और जब मैं कहता हूं, जीवन ही प्रभु है, तो इसका मतलब यह नहीं है मैं अपने को छोड़कर जो है वह जीवन है। मेरा जीवन मुझसे ही शुरू होता है। और जब मेरा जीवन बढ़ेगा तो धीरे-धीरे मेरा मैं ही बढ़ेगा! फैलेगा। ये

वृक्ष मुझमें समा जायेंगे; और लोग भी मुझमें समा जायेंगे; ये चांद-तारे भी मुझमें समा जायेंगे। जितना बड़ी यह मेरी चेतना फैलती चली जायेगी उतना ही बड़ा आनन्द; उतने ही बड़े जीवन को मैं उपलब्ध होता चला जाऊंगा। लेकिन जिसे फैलना है, उसे पता तो होना चाहिए, यह कौन हूं मैं? लेकिन हम कहते हैं, नहीं, यह तो जिन्दगी से भागना हो जायेगा।

मैंने सुना है, एक आदमी की शादी हुई। वह जिन्दगी में रोज ही शराब पीता रहा था। शादी के बाद भी दो वर्ष तक शराब पीता रहा। रोज ही पीता था, पत्नी को ख्याल ही न आया। यह तो जब कभी-कभी कोई शराब पीता है तो पता चलता है। रोज ही पीता था। पत्नी ने पहले दिन से ही उसके मुंह में वही बास देखी थी, वह समझी इसी की बास होगी। रोज वही चलता था। एक दिन उसने शराब न पी और वह घर आया। तो पत्नी को बड़ा गड़बड़ मालूम पड़ा। रोज के हिसाब से गड़बड़ था। उसने कहा, क्या बात है, क्या आज शराब पीकर आ गये हो? हाथ-पैर लड़खड़ाते हैं। उस आदमी ने कहा, देवी मैं रोज पीकर आता रहा हूं। आज ही नहीं पी, यह गलती हो गयी। मुझे खुद ही अपने हाथ-पैर गड़बड़ मालूम पड़ रहे हैं। वह रोज पीकर आता था तो एक व्यवस्था थी, एक ढंग था, एक आदत थी, एक जिन्दगी का अपना रूप था। एक दिन छोड़ दी है तो गड़बड़ हो गयी है।

हम सारे लोग भी जिन्दगी से भागे हुए लोग हैं और हमारे बीच में जब कभी कोई एक जिन्दगी से लौटता है तो हम कहते हैं, कहां जा रहे हैं जिन्दगी को छोड़कर! हम सब जिन्दगी से भागे हुए लोग हैं। जिसे हम जिन्दगी कह रहे हैं, वह जिन्दगी नहीं है। अगर वही जिन्दगी होती तो हमारी आंखें

आनन्द से भर गयी होतीं। अगर वही जिन्दगी होती तो किसी मंदिर में हम परमात्मा को खोजने न गये होते। जिन्दगी में वह मिल गया होता। अगर वही जिन्दगी होती तो हम पूछते न कि शांति का रास्ता क्या है? आनन्द का रास्ता क्या है? हमने पा ही लिया होता। अगर वही जिन्दगी होती तो ईश्वर के सम्बन्ध में हम बात न करते क्योंकि ईश्वर हमें मिल ही गया होता। लेकिन नहीं हमें कुछ मिला—न कोई सौंदर्य, न कोई सत्य, न कोई संगीत न जीवन में कोई रस, न कोई आनन्द—लेकिन फिर भी इसको हम कहते हैं जिन्दगी।

अगर यही जिन्दगी है तो फिर मौत क्या हो सकती है? सिर्फ सांस लेने का नाम जिन्दगी है? सिर्फ रोज सुबह उठ आने का नाम जिन्दगी है? रोज सांझ सो जाने का नाम जिन्दगी है? रोज खाना पचा लेने का और खाने को शरीर के बाहर फेंक देने का नाम जिन्दगी है? अगर यही जिन्दगी है, तब तो ठीक है। लेकिन इतनी-सी जिन्दगी से कोई राजी नहीं है। जिन्दगी में और फूलों की अपेक्षा है। जो कभी खिलते हुए मालूम नहीं पड़ते। लेकिन फिर भी हमें शक नहीं आता। न आने का कारण यह है कि आसपास हमारे जैसे ही लोग हैं। शक का कोई सवाल नहीं है। जैसे चारों तरफ लोग जी रहे हैं, वैसे ही हम जी रहे हैं। जैसे सारे लोग जी रहे हैं, वही जिन्दगी का ढग मालूम पड़ता है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि हमारे बीच जो आदमी जिन्दगी की तरफ गया है वह हमें उल्टा मालूम पड़ता है कि हमसे उल्टा जा रहा है। कोई सुकरात कोई कृष्ण या कोई बुद्ध हमें उल्टा मालूम पड़ता है। हमारी जिन्दगी छोड़कर कहां जा रहे हो? हम जिन्दा रह रहे हैं, तुम भाग कहां रहे हो? अगर हम जिन्दा हैं, और यही जिन्दगी है तो मैं कहूंगा, वे भागने वाले ही ठीक हैं। वे हमसे बृहत्तर जिन्दगी को उपलब्ध हो जाते हैं। कहां है बुद्ध की शांति

हमारी जिन्दगी में, और कहां है कृष्ण का आनन्द, कहां है लाओत्से का रस? हमारी जिन्दगी में नहीं है।

लाओत्से की जिन्दगी में एक बहुत अद्‌भुत घटना है। लाओत्से एक नदी के किनारे बैठकर मछली पकड़ रहा है। जाल डाल दिया है, बैठा हुआ है। उस देश के राजा ने, चीन के सम्राट ने लाओत्से की खोज के लिए कुछ लोग भेजे हैं और उनसे कहा है कि लाओत्से कहीं भी मिले तो उसे पकड़ लाओ। मैंने सुना है वह बहुत बड़ा बुद्धिमान आदमी है और मैंने सुना है कि उसने जिन्दगी का राज पा लिया है। तो हम उसे देश का प्रधानमन्त्री बनाना चाहते हैं ताकि वह सारे मुल्क को जिन्दगी का राज बता दे। आखिर उन लोगों ने नदी के किनारे बमुश्किल लाओत्से को पकड़ लिया है। पहले तो पता लगाना मुश्किल हुआ क्योंकि लाओत्से कभी एक जगह टिकता ही न था। सिर्फ मरे हुए टिकते हैं, जिन्दा तो बहे हुए चले जाते हैं। मरे हुओं को जांच हो तो वे वहीं टिके रहते हैं। तो लाओत्से का कोई ठिकाना न था।

जिस गांव में गया, लोगों ने कहा, हां, लाओत्से था, लेकिन लाओत्से तो हवा की तरह आया और गया। वह किसी और गांव में होगा। बमुश्किल उस नदी के किनारे कुछ लोगों ने उसे जाकर पकड़ लिया। वह मछलियों को पकड़ने के लिए जाल डाल कर चुपचाप बैठा हुआ था। उन्होंने जाकर कहा, लाओत्से, क्या पागलपन कर रहे हो, फैंको इस जाल को। देश का सम्राट तुम्हें प्रधानमंत्री बनाने को है। लाओत्से ने गौर से उन्हें देखा और कहा कि बात मैंने सुनी है कि तुम्हारे सम्राट के महल में एक सोने का कछुवा है। एक कछुवे के ऊपर सोने की पर्त चढ़ा दी गयी है। उन्होंने कहा है। वह बहुत प्राचीन है, हजारों साल से, बाप-दादों से चला आ रहा है। उसकी पूजा होती है। उसे सिंहासन पर बिठाया है। उसके

आसपास लाखों के हीरे-जवाहरात जड़े हैं। लाओत्से ने कहा, वही मैं पूछता हूं। है न ऐसा कछुवा ? उन्होंने कहा, हां, ऐसा कछुवा है। लाओत्से ने कहा, और पास में एक कछुवा पड़ा हुआ था, रेत में लेट रहा था, कीचड़ में खेल रहा था—लाओत्से ने कहा, सुनो मुझसे। अगर तुम इस कछुवे से कहो कि हम तुम्हें सोने की वर्क चढ़ाकर और सिंहासन पर बिठा देंगे, तो यह वहां जाना पसंद करेगा या मिट्टी में ही लोटता रहेगा। लोगों ने कहा, पागल होगा यह यदि वहां जाना पसंद करे। क्योंकि वहां सिंहासन पर बिना मरे कोई बैठ नहीं सकता। वहां मर जाना पड़ेगा, तभी सोना चढ़ेगा ऊपर। तो लाओत्से ने कहा, हम भी यहीं ठीक हैं, हम भी सिंहासन पर नहीं बैठते। क्षमा करो, वापस लौट जाओ। उन्होंने कहा, तुम पागल हो गये हो ? जिन्दगी को छोड़ते हो ? प्रधानमंत्री का मौका मिल रहा है। उसने कहा, हम पूरी तरह जिन्दा हैं, हम जरा भी कम जिन्दा नहीं हैं। हम पूरी जिन्दगी का मजा ले रहे हैं। और अपने प्रधानमंत्रियों से, अपने सम्राट से कह देना कि अगर जिन्दगी को पाना हो तो लाओत्से के पास आ जायें, लाओत्से को जिस दिन मरना होगा, उनके पास आ जायेगा। उनमें से एक ने कहा, एस्केपिस्ट मालूम होते हो, पलायनवादी मालूम होते हो। कहां इतना बड़ा मौका मिल रहा है, उसे छोड़कर भाग रहे हो ? लाओत्से ने कहा, तुम यह कहते हो। अगर मैं जाऊंगा तो यह कछुवा मुझ पर हंसेगा, ये मछलियां मुझ पर हंसेंगी, ये हवाएं मुझ पर हंसेंगी, ये वृक्ष मुझ पर हंसेंगे कि फंस गया पागल ! जिन्दगी को छोड़कर कहां जा रहा है ?

जिन्दगी कहां है, यह ठीक से हम समझ लें तो पलायन क्या है, यह भी समझ में आ जाये। जिन्दगी कहां है ? जहां हम जी रहे हैं, वहां जिन्दगी है ? नहीं, हमने बहुत गहरी भूल

कर ली है। हमने जीवित रहने के रास्तों को जिन्दगी समझ लिया है। हमने आजीविका की व्यवस्था को जिन्दगी समझ लिया है। हम रोटी कमा लेते हैं; मकान बना लेते हैं; पत्नी ले आते हैं; घर बसा लेते हैं; बच्चे पैदा कर लेते हैं और हम सोचते हैं—जिन्दगी पूरी हो गयी। यह तो सिर्फ जिन्दगी की व्यवस्था हुई। अभी जिन्दगी पूरी नहीं होगी अब जिन्दगी शुरू होनी चाहिए। यह तो सिर्फ व्यवस्था हुई।

एक आदमी पलंग ले आया और बिस्तर लगा दिया और मसहरी बांध दी और तकिये लगा दिये और खड़ा हो गया और उसने कहा, सोना पूरा हो गये। वह सोया नहीं उस मसहरी पर, वह उस बिस्तर पर लेटा नहीं। उसने, इन्तजाम तो पूरा कर लिया, अब सोना पूरा हो गया। लेकिन बिस्तर का पूरा इन्तजाम सोना नहीं है, सिर्फ सोने का प्रारम्भिक कदम है।

जिसे हम जिन्दगी कह रहे हैं वह सिर्फ आजीविका की व्यवस्था है। और हम उसमें खो गये हैं और करीब-करीब ऐसा है कि हम उसी में खोये हुए मर जाते हैं। जिन्दगी जीने का हमें मौका ही नहीं मिलता। मिलेगा भी नहीं। जिन्दगी की व्यवस्था बाहर हो सकती है, जिन्दगी भीतर है। इस राज को ठीक से समझ लेना जरूरी है। जिन्दगी की व्यवस्था बाहर हो सकती है जिन्दगी भीतर है। पलंग बाहर हो सकता है, जिसे सोना है, वह भीतर है। रोटी बाहर हो सकती है, जिसे खाना है वह भीतर है। पत्नी बाहर हो सकती है, जिसे प्रेम करना है और देना है, और लेना है वह भीतर है। जिन्दगी का सारा इन्तजाम बाहर है और जिन्दगी भीतर है। लेकिन हम बाहर के ही इन्तजाम में खो जाते हैं और भूल जाते हैं। कोई आदमी भीतर की तरफ जाये तो हम कहेंगे, क्या पागलपन कर रहे हो ? जिन्दगी छोड़कर कहां भागे चले जा रहे हो ?

लेकिन ऐसा हो जाता है। अगर बहुत लोग यही कहें तो बेचारा जो जा रहा है अपनी तरफ वह भी सोचने लगता है कि पता क्योंकि जब सारे लोग कह रहे हैं, हजारों लोग यही कह रहे नहीं, हैं तो यही ठीक कहते होंगे। सुनी होगी कहानी—छोटी-सी एक कहानी है—

एक ब्राह्मण एक गांव से एक बकरी खरीदकर वापस लौट रहा है। बड़ी प्रसिद्ध है कहानी, लेकिन आधी सुनी होगी। मैं पूरी ही सुनाना चाहता हूं। वह बकरी को रखकर कंधे पर वापस लौट रहा है। सांझ हो गयी है, दो चार गुण्डों ने उसे देखा है। उन्होंने कहा, अरे, यह बकरी तो बड़ी स्वादिष्ट मालूम पड़ती है। इस नासमझ ब्राह्मण के हाथ जा रही है, इसको मजा भी क्या आयेगा, ब्राह्मण को भी क्या, बकरी को भी क्या। तो बकरी को छीन लेना चाहिए। एक गुण्डे ने आकर उसके सामने उस ब्राह्मण से कहा, नमस्कार पण्डित जी। बड़ा अच्छा कुत्ता खरीद लाये। उसने कहा, कुत्ता! बकरी है महाशय! आंखें कमजोर हैं आपकी? उसने कहा, बकरी कहते हैं इसे आप? आश्चर्य है। हम भी बकरी को जानते हैं। लेकिन आपकी मर्जी, अपनी-अपनी मर्जी, कोई कुत्ते को बकरी कहना चाहे तो कहे। वह आदमी चल पड़ा। उस ब्राह्मण ने सोचा, अजीब पागल हैं इस गांव के। बकरी को कुत्ता कहते हैं? लेकिन फिर भी एक दफे टटोलकर देखा शक तो थोड़ा आया ही। लेकिन उसने पाया कि बकरी है, बिल्कुल फिजूल की बात है। अभी दस कदम आगे बढ़ा था। शक मिटाकर किसी तरह आश्वस्त हुआ था कि दूसरा उनका साथी मिला। उसने कहा, नमस्कार पण्डित जी! लेकिन आश्चर्य, ब्राह्मण होकर कुत्ता सिर पर रखें! जाति से बाहर होना है उसने कहा, कुत्ता! लेकिन अब वह उतनी हिम्मत से न कह सका कि बकरी है। हिम्मत कमजोर

पड़ गयी। उसने कहा, आपको कुत्ता दिखायी पड़ता है? उसने कहा, दिखायी पड़ता है? है। नीचे उतारिए, गांव का कोई आदमी देख लेगा, पड़ोस का तो मुश्किल में पड़ जायेंगे। वह आदमी गया तो उस ब्राह्मण ने उस बकरी को नीचे उतार कर गौर से देखा। वह बिल्कुल बकरी थी। यह तो बिल्कुल बकरी है, लेकिन दो-दो आदमी भूल कर जायें, यह जरा मुश्किल है। फिर भी सोचा, मजाक भी कर सकते हैं। चला फिर कन्धे पर रखकर, लेकिन अब वह डर कर चल रहा है, अब वह जरा अंधेरे में से बचकर निकल रहा है। अब वह गलियों में से चलने लगा है, अब वह रास्ते पर नहीं चल रहा है। तीसरा आदमी उसे एक गली के किनारे पर मिला। उसने कहा, पण्डित जी हद्द कर दी। कुत्ता कहां मिल गया? कुत्ते की तलाश मुझे भी है। कहां से ले आये हैं यह कुत्ता, मैं भी चाहता हूं। तब तो वह यह भी न कह सका कि क्या कह रहे हैं। उसने कहा कि जी हां, खरीदकर ला रहा हूं। वह आदमी गया कि फिर उसने उतार कर भी नहीं देखा, उसे छोड़ा एक कोने में और भागा। उसने कहा कि इससे भाग ही जाना उचित है। झंझट हो जायेगी, गांव के लोग देख लेंगे। पैसे तो मुफ्त दे ही आया, जात और चली जा सकती है।

यह जो तीन आदमी कह गये हैं एक बात को तो बड़ी सच मालूम लगती है। यह तो आधी कहानी है। दूसरे जन्म में ब्राह्मण फिर बकरी लेकर चलता था बकरी लेकर लौट रहा है लेकिन पिछले जन्म की याद है। जिसको याद रह जाये उसी को तो ब्राह्मण कहना चाहिए, नहीं तो किसी और को ब्राह्मण कहना नहीं चाहिए। बकरी लेकर लौट रहा है, वही गुण्डे। असल में हम भूल जाते हैं इसलिए ख्याल नहीं रहता है, वही वही बार-बार हमको कई बार मिलते हैं, कई जन्मों में वही लोग बार-बार मिल जाते हैं। वही तीन गुण्डे, उन्होंने कहा,

अरे ब्राह्मण बकरी को लिए चला जा रहा है। छीन लो, उन्हें कुछ पता नहीं है कि पहले भी छीन चुके हैं। किसको पता है? अगर हमें पता होता कि हम पहले भी यही कर चुके हैं तो शायद फिर दुबारा करना मुश्किल हो जाये। फिर उन्होंने षड्यन्त्र रच लिया है, फिर एक गुण्डा उन्हें रास्ते पर मिला है। उसने कहा, पंडित जी, बड़ा अच्छा कुत्ता कहां ले जा रहे हैं ? पंडित जी ने कहा, कुत्ता सच में बड़ा अच्छा है। उसने गौर से देखा, गुण्डे ने सोचा, हमको तो बकरी दिखायी पड़ती थी, हम तो धोखा देने के लिए कुत्ता कहते थे। और उस पंडित ने कहा, कुत्ता सच में बड़ा अच्छा है, बड़ी मुश्किल से मिला, बहुत मांग कर लाया, बड़ी मेहनत की, खुशामद की किसी आदमी की, तब मिला। उस गुण्डे ने बहुत गौर से फिर से देखा। मामला क्या है, भूल हो गयी है ? लेकिन उसने कहा, नहीं पंडित जी, कुत्ता ही है न उसने कहा, कैसी बात कर रहे हैं, कुत्ता ही है। अब वह गुण्डा मुश्किल में पड़ गया है, वह यह भी नहीं कह सकता कि बकरी है, क्योंकि खुद उसने कुत्ता कहा था। दूसरे कोने पर दूसरा गुण्डा मिला। उसने कहा कि धन्य हैं, आप महाराज, कुत्ता सिर पर लिए हुए हैं ?

ब्राह्मण ने कहा, कुत्ते से मुझे बड़ा प्रेम है। आपको पसन्द नहीं आया कुत्ता ? उस आदमी ने गौर से देखा, उसने कहा, कुत्ता ! तीसरे चौरस्ते पर मिला है तीसरा आदमी, लेकिन उन दोनों को खबर दे दी है कि मालूम होता है, हम्हीं गलती में हैं। हमें बकरी दिखायी पड़ रही है। उस तीसरे आदमी ने गौर से देखा। उस पंडित ने कहा, क्या देख रहे हैं गौर से ? उसने कहा, कुछ नहीं, आपका कुत्ता देख रहा हूं। काफी अच्छा है।

हम भीड़ से जी रहे हैं और चल रहे हैं और पुनरुक्ति

हमारा आधार बन गया है। चारों तरफ जो हो वह हमें स्वीकार हो जाता है। अगर पुनरुक्ति की जाये बार-बार असत्य की भी तो वह सत्य मालूम पड़ने लगता है। यह बात बहुत बार दोहरायी गयी है कि संन्यासी वह है जो भाग रहा है जिन्दगी से। जो भाग रहा है वह संन्यासी तो क्या है, गृहस्थ भी नहीं है। संन्यासी होना तो बहुत मुश्किल है। जो जिन्दगी को जी रहा है वह संन्यासी है। और जो सिर्फ जिन्दगी जीने का इन्तजाम कर रहा है, जो जी नहीं रहा है, वह गृहस्थ है। जो सिर्फ जिन्दगी का इन्तजाम कर रहा है और जी नहीं रहा है वह गृहस्थ है। और जो जिन्दगी को जी रहा है वह संन्यासी है।

अगर भागने की भाषा में सोचें तो गृहस्थ जिन्दगी से भागा हुआ हो सकता है, संन्यासी भागा हुआ नहीं हो सकता। लेकिन हम भागे हुए संन्यासियों को जानते हैं। असल में हमने भागे हुओं को ही संन्यासी समझ रखा है। इसलिए बड़ी भूल हो गयी है। संन्यासी और जिन्दगी से भागेगा ? तो फिर जिन्दगी को जियेगा कौन ? फिर जिन्दगी को जियेगा कौन ? और संन्यासी अगर जिन्दगी से भागेगा तो परमात्मा को जानेगा कौन ? क्योंकि कहीं अगर परमात्मा है तो जिन्दगी में ही छिपा है। नहीं, संन्यासी जिन्दगी को जीता है उसकी परिपूर्णता में। लेकिन निश्चित ही परिपूर्णता में जीने के लिए बहुत सी बातें उससे छूटकर गिर जाती हैं। आप यह मत सोचना कि वह छोड़ देता है। मेरे हाथों में कंकड़-पत्थर भरे हैं और मुझे हीरों की खदान मिल जाये और मैं पत्थर छोड़ दूं हाथ से और हीरों की खदान से हीरे बीनने लगूं और आप कहें कि यह आदमी बड़ा पागल मालूल होता है, कंकड़-पत्थरों का त्याग कर दिया। तो पागल मैं हूं या आप ? आपको हीरे नहीं दिखायी पड़ रहे हैं, आपको हीरे की खदानें नहीं दिखायी

पड़ रही हैं। आपको सिर्फ इतना ही दिखायी पड़ रहा है कि मेरे हाथों में कंकड़-पत्थर थे, वे मैंने छोड़ दिये। मैं बड़ा त्यागी हूं। अब तक किसी संन्यासी ने कोई त्याग नहीं किया। सिर्फ नासमझ त्याग कर लेते हैं।

बात दूसरी है। संन्यासी तो और वृहत्तर आनन्द को उपलब्ध हो जाता है, इसलिए क्षुद्र से उसे हाथ खाली करने पड़ते हैं। वह हाथ से छोड़ता नहीं है, चीजें छूट जाती हैं, बेमानी हो जाती हैं। अगर आपको हीरा मिल जाये तो आप पत्थर को हाथ में लेकर चलेंगे? या कि पत्थर आपको छोड़ना पड़ेगा? नहीं, पता ही नहीं चलेगा कि कब पत्थर हाथ से छूट गया और हीरा आ गया। हां, दूसरे, जिनके हाथों में अभी भी पत्थर हैं, वे समझेंगे कि बड़ा त्यागी आदमी है। उन्हें वह हीरा दिखायी नहीं पड़ रहा है। और कुछ ऐसे हीरे हैं जो दिखायी नहीं पड़ते। धर्म का उन्हीं हीरों से सम्बन्ध है जो दिखायी नहीं पड़ते। कुछ ऐसे भोग हैं जो दिखायी नहीं पड़ते।

संन्यासी वह नहीं है जिसने भोग छोड़ दिया, संन्यासी वह है जो भोग की पूर्णता को उपलब्ध हुआ, जो अब परमात्मा को भी भोग रहा है। इसे ठीक से समझ लेना—जो परमात्मा को भी भोग रहा है। जो भोजन कर रहा है, तो सिर्फ भोजन ही नहीं कर रहा है, भोजन में परमात्मा का स्वाद भी समाविष्ट है। और जो अगर आपके सुन्दर चेहरे को देख रहा है तो आपके सुन्दर चेहरे को ही नहीं देख रहा है, आपके भीतर से जो सौंदर्य की अनन्त धारा जुड़ी है प्रभु से, वह भी उसे दिखायी पड़ गयी है। संन्यासी का अर्थ है—वह जिसने भोग का राज जान लिया, जिसने जीवन के रस की उपलब्धि की कला, कीमिया सीख ली। लेकिन हम तो यही सोच रहे हैं कि भागने वाला संन्यासी है। भागने वाला रुग्ण है, संन्यासी

नहीं है। भागने वाला विक्षिप्त है। भागने वाला, जो हाथ में था कंकड़-पत्थर वह भी छोड़ दिया है, और हीरे तो उसे मिले नहीं। वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया है। इसलिए जिसे हम इस देश में संन्यासी कह रहे हैं, सारी दुनिया में वह बड़ी मुश्किल में पड़ा हुआ आदमी है। उसने घर भी छोड़ दिया, पत्नी भी छोड़ दी, बच्चे भी छोड़ दिये, और परमात्मा भी उसे मिला नहीं। वह त्रिशंकु की भांति बीच में अटका रह गया।

मुझे कितने संन्यासी मिलते हैं रोज। अगर सबके सामने मुझसे बात करते हैं तो आत्मा परमात्मा की बात करते हैं। एकान्त में मुझसे मिलते हैं तो कहते हैं, बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं। क्योंकि जो था वह हमने छोड़ दिया और जो मिलने की आशा थी वह मिला नहीं। हम बहुत कठिनाई में हैं। संन्यासी की कठिनाई का आपको पता नहीं कि संन्यासी कितनी कठिनाई में है। वह तो संन्यासी भाग क्यों नहीं आता संन्यास छोड़कर? हमने लौटने के सब रास्ते बन्द कर रखें हैं अन्यथा सौ में से निन्यानबे संन्यासी आज जायें और कल वापस लौट आयें। इसीलिए हमने रास्ते भी बन्द कर रखे हैं कि लौट मत आना। लौटने का पक्का डर है। तो हम कहते हैं, गृहस्थ से संन्यासी हो तो आदर देते हैं, संन्यासी गृहस्थ से वापस लौटे तो अनादर करते हैं। अनादर रोकने का कारण बन जाता है। अपमान करते हैं, अपमान रोकने का कारण बन जाता है। एक दफा एक आदमी संन्यासी हो जाये, उसे लौटने की हम सुविधा नहीं देते हैं। हम कहते हैं, बस। संन्यास में एंट्रेंस तो है, एक्जिट बिल्कुल नहीं है। वहां भीतर जाने का रास्ता है, बाहर जाने का रास्ता ही नहीं रखा। बाहर आने का रास्ता इसलिए नहीं रखा कि अगर रखें रास्ता तो हाल खाली हो जाये। वहां से सभी वापस आ जायें, इस

दरवाजे से जायें, उस दरवाजे से दूसरे दिन बाहर आते मालूम पड़ें। क्योंकि जो आदमी बिना पाये छोड़ देगा वह मुश्किल में पड़ जायेगा।

पाना पहले है, छोड़ना पीछे है। छोड़ना पाने की छाया है। जो पा लेता है वह छोड़ सकता है। जो परमात्मा को पा लेता है वह संसार को छोड़ सकता है। छोड़ने की बात ही फिजूल है। असल में जो परमात्मा को पा लेता है उससे वे सब क्षुद्रताएं छूट जाती हैं, जिन्हें वह कल तक पकड़े हुए था।

लेकिन, यह हमारे ख्याल में न होने से हमने एक त्याग की, छोड़ने की, निगेटिव की उन मित्र ने पूछा है कि आप छोड़ने की बातें मत बतायें। मैं बता ही नहीं रहा हूं छोड़ने की बातें। मैं निगेटिव बात नहीं बता रहा हूं। मैं तो बिल्कुल विधायक बात ही कह रहा हूं। मैं तो यही कह रहा हूं कि जिन्दगी ही परमात्मा है, और इसे हम पूरी तरह जी सकें, उसकी कला धर्म है।

दूसरी बात उन्होंने यह पूछी है कि बुराई है। तो बुराई को हम अकेला ध्यान करने से कैसे मिटा सकेंगे। यह ऐसे ही है जैसे कोई आदमी कहे कि बीमारी है, और बीमारी अकेली दवा लेने से हम मिटा सकेंगे। बीमारी मिटाने का कोई सीधा रास्ता बताइए। एक आदमी कहे कि मुझे खांसी आ रही है, मुझे जुकाम है, मुझे बुखार है; मुझे टी० बी० है, मुझे कैंसर है और डॉक्टर उसे एक बोतल पकड़ाता है। वह आदमी कहता है, पागल हो गये हो तुम ? इधर कैंसर से मरे जा रहे हैं, तुम बोतल पकड़ा रहे हो ? बोतल क्या करेगी ? वह आदमी कहे, इधर कैंसर से मरा जा रहा हूं, तुम लाल रंग का पानी मुझे पकड़ा रहे हो ? यह लाल रंग के पानी से क्या होगा ? लेकिन उसे ख्याल में नहीं आ रही है यह बात कि कैंसर या बीमारी कोई सीधी निकाल कर बाहर थोड़ी रख देगा। कैंसर

या बीमारी निकालने के लिए, बदलाहट करने के लिए कुछ उससे विपरीत डालना पड़ेगा।

हम बीमार हैं, बीमारी से विपरीत प्रयोग करने से बीमारी कट जायेगी। यह थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि बुराई है इसलिए कि हम शांत नहीं हैं। हम शांत हो जायें तो बुराई मिट जायेगी। बुराई है बीमारी, ध्यान है दवा। ध्यान है औषधि। और ध्यान रहे, आज तक पृथ्वी पर ध्यान से बड़ी औषधि नहीं खोजी जा सकी है। बहुत औषधियां खोजी गई हैं लेकिन ध्यान से बड़ी कोई औषधि अब तक नहीं खोजी गई है। इसका कारण है। सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारे ध्यान के अभाव के कारण ही, हमारी बीमारियां, हमारी बुराइयां पैदा होती हैं। जैसे उदाहरण के लिए—

आपमें क्रोध है। आप किसी से पूछें कि क्रोध को हम सीधा अलग कैसे करें ? क्रोध को सीधा करने का कोई उपाय नहीं होता है। क्रोध है, वह इस बात की खबर दे रहा है कि आप भीतर अशांत हैं। अशांति से क्रोध जन्मता है। आप कहें, मुझे क्रोध को अलग करना है, मुझे अशांति से कोई मतलब नहीं है। तो आप कभी क्रोध को अलग न कर सकेंगे, आप कहें मुझे पॉजीटिव, सीधा रास्ता बता दें। कोई रास्ता नहीं है। क्रोध में हैं, यह इस बात की खबर है कि क्रोध सिर्फ लक्षण है इस बात का कि भीतर अशांत हैं आप। भीतर शांति लानी पड़ेगी। भीतर शांति आ जायेगी, ऊपर से क्रोध विलीन हो जायेगा।

एक आदमी को बुखार चढ़ा है, शरीर पर गर्मी है। शरीर की गर्मी असली बुखार नहीं है। बुखार तो भीतर होगा, बीमारी भीतर होगी। गर्मी तो केवल बीमारी की खबर है कि भीतर बुखार है, भीतर बीमारी है, शरीर उतप्त हो गया है। उतप्त शरीर खबर दे रहा है कि भीतर बीमारी है।

अब एक आदमी कहे कि मुझे शरीर को ठण्डा करने का सीधा उपाय बता दो। तो ठीक है कि जाओ ठण्डे पानी में नहाओ, बर्फ रख लो अपने शरीर पर। उससे बुखार ही नहीं जायेगा, बीमार भी चला जायेगा। गर्मी सिर्फ लक्षण है, ताप सिर्फ लक्षण है। बीमारी नहीं है। बीमारी और गहरे में है। और शरीर की व्यवस्था है कि गर्म करके वह खबर दे दे कि भीतर बीमारी है ताकि ऊपर तक खबर पहुंच जाये, नहीं तो पता कैसे चलेगा। क्रोध लक्षण है। बीमारी ? बीमारी भीतर अशांत चित्त है। और वह अशांत चित्त ध्यान के प्रयोग से शांत होता है। वह मित्र मुझसे पूछते हैं कि आप कहते हैं, ध्यान ! हमारी बीमारियां हैं, अशांति है, क्रोध है, घृणा है, ईर्ष्या है, हजार तरह की बुराइयां हैं, और आप कहते हैं ध्यान अकेले ध्यान से क्या होगा ? मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि जिनको आप बीमारियां और बुराइयां कह रहे हैं वे बुनियादी रूप से बुराइयां नहीं हैं, बुराइयों के सिर्फ बाहरी लक्षण हैं, बाहरी खबरें हैं। यह ऐसा ही है जैसे कि यहां अन्धेरा भरा हो और कोई आकर हमसे कहे कि अंधेरे को सीधा अलग करने का रास्ता बता दीजिये। हम उससे कहें कि तुम एक दीया जलाओ। वह हमसे कहे कि दीये से हमें कुछ लेना-देना नहीं। हमें अंधेरा अलग करना है। हमें तो अंधेरे को अलग करने का डायरेक्ट रास्ता चाहिए, सीधा रास्ता चाहिए। यह दीये-वीये जलाने की झंझट में हम न पड़ेंगे। अंधेरे को दूर करना है।

उसकी बात तो ठीक है। वह कहता है, अंधेरे को दूर करना है तो दीये क्यों जलायें ? आप अन्धेरे को काटने की कोई तरकीब बता दें। कोई तलवार हो, जिससे अंधेरा कट जाये; कोई डिब्बे हों, जिसमें अंधेरे को चैक करें और फेंक आयें। कोई ऐसी तरकीब बतायें कि अंधेरे से सीधे निपटारा हो जाये। हम इस दीये के जलाने की झंझट में नहीं पड़ना

चाहते। इसमें हम पड़ जायेंगे, अंधेरा कौन अलग करेगा ? तब मुश्किल हो जायेगी। अंधेरे को सीधा अलग नहीं किया जा सकता। दीया जलाया जा सकता है। और दीये के जलने पर अंधेरा अलग नहीं होता है। असल में अंधेरा तो था ही नहीं। दीये के जलने पर पता चल जाता है कि नहीं था। कहीं चला नहीं जाता अंधेरा कि इधर हमने दीया जलाया तो इधर का अंधेरा कहीं बगल के रास्ते से कहीं और चला गया। कहीं जाता नहीं है। अंधेरा कोई वस्तु नहीं है। अंधेरा केवल दीये का अभाव है, प्रकाश का अभाव है।

जिसको हम ईबिल कहते हैं, बुराई कहते हैं वह केवल भलाई का अभाव है। जिसे हम क्रोध कहते हैं, वह केवल अशांति का अभाव है। ध्यान दीये का जलाना है। भीतर दीया जल जाये बाहर से ये सब अभाव विदा हो जायेंगे। अब तक किसी ध्यानी आदमी ने अगर कोई बुराई की हो जो विचारणीय हो जाये।

एक बहुत अद्‌भुत फकीर हुआ नागार्जुन। वह एक गांव से गुजर रहा है और उस गांव की रानी उसे बड़ा आदर करती है। उसने उसको भोजन खिलाया है। नंगा फकीर है और उसको एक हाथ में सोने का पात्र दे दिया है और कहा, लकड़ी का पात्र यहां छोड़ दो। सोने का पात्र है और उस पर हीरे जड़े हैं। उसकी लाखों की कीमत होगी। नागार्जुन ने ले लिया और चल पड़ा। रानी थोड़ी चकित हुई क्योंकि उसने भी सोचा था त्यागी है। कहेगा कि मैं छू नहीं सकता सोने को। हम त्यागी को ऐसे ही पहचानते हैं। हम त्यागी को भी सोने से ही पहचानते हैं जब तक वह यह न कहे, हम छू नहीं सकते सोने को। तब तक हम त्यागी को नहीं पहचानते हैं। जब कोई त्यागी कहता है, यह सब मिट्टी है, हम नहीं छूते। लेकिन मिट्टी को तो वह रोज छूता है और सोने को इन्कार

करता है। अगर मिट्टी ही है तो बेफिक्री से छुओ। नहीं, लेकिन वह कहता है सोना मिट्टी है, हम न छुयेंगे और मिट्टी को मजे से छू लेता है। तब जरा शक होता है, सोना मिट्टी नहीं है। वह कह रहा है, सोना मिट्टी है लेकिन उसको सोना सोना दिखाई पड़ रहा है।

उस रानी ने उसको, फकीर को कहा, अरे, आपने मना नहीं किया ? कहना था कि यह सोने का पात्र ! उसने कहा, कैसा सोने का पात्र ? कहां का सोने का पात्र ? उस रानी ने कहा, मैंने लाखों रुपये खर्च किये हैं। उसने कहा, वह तेरी नासमझी होगी। तू जान, तेरा काम जाने। मुझे क्या मतलब ? मुझे इसमें रोटी मांगनी है, पात्र किसी का भी हो। रोटी इसमें खानी है। उसे मुझे मतलब है, इससे ज्यादा मुझे मतलब नहीं है। मुझे पात्र होने से मतलब है। वह लकड़ी का था सोने का था, काहे का, वह तुम्हारा हिसाब होगा। हमारा काम इतना है, इसमें रोटी और दाल रखकर हम खा लें। हमारा इतना काम तो यह दे देगा न पात्र। उस स्त्री ने कहा, उतना तो दे ही देगा। लेकिन मैं सोचती थी, सोने का है, आप शायद इन्कार करेंगे। उसने कहा, मैं फकीर आदमी मुझे सोने से क्या मतलब ? आप समझ रहे हैं, उसने कहा, मैं फकीर आदमी, मुझे सोने से क्या मतलब ? होगा सोने का। वह उन्हीं के लिए होगा, जिनको सोने का मतलब होगा। रानी चकित हुई। फकीर तो चला गया।

नंगा फकीर है, सोने का पात्र है, हीरे जड़े हैं वह चमकते हैं धूप में। गांव के एक चोर को दिखाई पड़ा। उस चोर ने कहा, हैरानी ! मरे जाते हैं, परेशान हुए जाते हैं। न हीरे मिलते हैं, न सोना मिलता है। यह आदमी नंगा आदमी है, इसको कहां से इतना बढ़िया पात्र मिल गया ?

मगर जिन्दगी ऐसी है। यहां जो दौड़ता है जिन चीजों के

पीछे उन्हीं को खो देता है। यहां जिन्दगी का नियम यह है कि भागो किसी के पीछे, और वह भाग खड़ा होगा। और तुम उसकी तरफ पीठ करके भागो और वह थोड़ी देर में तुम्हारे पीछे पता लगाता हुआ आता होगा कि यह मामला क्या है, आप जा कहां रहे हैं ?

उस चोर ने कहा, लेकिन यह फकीर कितनी देर तक बचा सकेगा इस पात्र को। चोर उसके पीछे हो लिया। फकीर गांव के बाहर मरघट में ठहरा है एक टूटे खण्डहर में, भरी-दोपहरी में। पीछे पदचाप सुनायी पड़ते हैं तो उसने सोचा कि मेरे पीछे तो कोई कभी नहीं आता है। मालूम होता है, इस पात्र के पीछे कोई आ रहा है। यहां दुनिया बड़ी अजीब है। यहां आदमियों के पीछे कोई नहीं जाता, हाथ में सोने के पात्र हों तो बहुत लोग चले जाते हैं। यहां आदमी की तो कोई इज्जत नहीं है, हाथ में पात्र क्या है, यह सवाल है। आत्मा की तो कोई कीमत नहीं है यहां। कपड़े कैसे हैं, खीसे गरम हैं या नहीं गरम हैं, वह मूल्यवान है।

वह गया फकीर अन्दर। उसने सोचा, नाहक यह बिचारा भरी-दोपहरी में इतनी दूर तक आया। रास्ते में कह देता तो वहीं इसको दे देते। और न मालूम कितनी देर तक इसको छिपकर बैठना पड़ेगा। मेरे तो सोने का समय हो गया है। तो उसने खिड़की से वह पात्र बाहर फेंक दिया और सो गया। वह चोर वहीं खिड़की के नीचे छिपा था, पात्र को गिरते देखा तो बड़ा हैरान हो गया। उसने कहा, अजीब आदमी है। इतना कीमती पात्र ऐसे फेंक दिया है। खड़े होकर उसने कहा, कि धन्यवाद ! मैं तो चोरी करने आया था, आपने पात्र फेंक ही दिया। उस फकीर ने कहा, मैंने सोचा, नाहक तुम्हें चोरी करवाने के लिए मैं क्यों जिम्मेदार बनूं ? असल में चोरों के लिए वे सब लोग जिम्मेवार हैं

जिनकी तिजोरियों पर ताले हैं। उसने कहा, मैं क्यों फिजूल झंझट में पड़ूं ? तो मैंने कहा, फेंक दूं। मैं भी झंझट से बचा, आराम से सो जाऊं। तुम भी अपना ले जाओ, तुम भी चोर न बन पाओ। उस चोर ने कहा, अजीब आदमी हैं, क्यों मैं थोड़ी देर भीतर आ सकता हूं ? उस फकीर ने कहा, इसीलिए मैंने पात्र बाहर फेंका। भीतर तो तुम आते, लेकिन तब, जब मैं सो गया होता। इसीलिए मैंने पात्र फेंका कि जगते में भीतर आ जाओ तो शायद सोने का पात्र ही नहीं, कुछ और भी तुम्हें दे सकूं। वह चोर भीतर आ गया। वह पैर पकड़ कर उस फकीर के बैठ गया। उसने कहा, मैंने ऐसा आदमी नहीं देखा। मन में ईर्ष्या होती है। कभी-कभी ऐसा होता है, कब वह दिन होगा कि मैं भी ऐसे सोने के पात्र खिड़की के बाहर फेंक दूं, उस फकीर ने कहा, बस, हो गया काम। यही मैं चाहता था। अब तू जा, बात हो गयी। नहीं, उसने कहा, इतनी जल्दी न जाऊंगा। इतनी शांति कहां पायी कि सोने का पात्र इस तरह फेंक सकते हो। इतना आनन्द कहां पाया कि सोने के पात्र का कोई मूल्य नहीं मालूम पड़ता है। इतनी खुशी, इतनी जिन्दगी कहां मिल गयी ? कुछ मुझे भी रास्ता बताओगे ? लेकिन एक बात पहले कह दूं, उस चोर ने कहा कि मैं और भी संतों के पास गया हूं। चोर अक्सर संतों के पास जाते हैं।

असल में चोरों के सिवाय शायद ही कोई जाता हो। वे जाते हैं। संतों के पास अक्सर गया हूं, वह पहले तो मुझसे यही कहते हैं कि चोरी छोड़ दो फिर कुछ हो सकता है। वह छूटती नहीं अपने से। वह छूट सकती नहीं। तो एक पहले बात बता दूं कि चोरी छोड़ने की बात मत करना। वह फकीर हंसने लगा और उसने कहा, फिर मालूम होता है तुम संतों के पास गये ही नहीं। तुम भूतपूर्व चोरों के पास गये होंगे। क्योंकि जो पहले से एकदम

चोरी छोड़ने की बात करते हैं, जरूर कुछ गड़बड़ है, चोरी से कुछ लगाव है उनका। पहली बात यही करते हैं, उसने कहा, यही करते हैं। सब जानते हैं कि मैं चोर हूं तो वह पहले कहते हैं कि चोरी छोड़ो, फिर कुछ हो सकता है। बात वहीं अटक जाती है। वह शर्त ही पूरी नहीं होती। उस फकीर ने कहा, हम ये बातें न करेंगे। हमें चोरी से कुछ लेना-देना नहीं है। उस फकीर की बात सुनकर चोर ने कहा, फिर अपना इतना मेल हो सकता है। कहिए, मैं करूंगा। उस फकीर ने कहा, एक काम कर। चोरी ध्यानपूर्वक करना।

तो उसने कहा, क्या मतलब ? चोरी करूं ? फकीर ने कहा, बिल्कुल बेफिक्री से कर, लेकिन ध्यानपूर्वक। फकीर से पूछा, यह ध्यानपूर्वक चोरी का क्या मतलब हुआ ? उस फकीर ने कहा, जब तू चोरी कर तो पूरा जागा हुआ शांत मन से, पूरे होश से भरे हुए चोरी करना। बेहोशी में मत करना। पूरा जागृत होकर कि चोरी कर रहा हूं, जानते हुए हाथ उठाना, ताले तोड़ना, धन निकालना, जानते हुए कि चोरी कर रहा हूं, बस इतना, और कुछ नहीं। उस चोर ने कहा, यह हो सकेगा। नतीजे की खबर कब दूं। फकीर ने कहा, पन्द्रह दिन तक मैं यहां टिका हूं, तू आ जाना, जब तुझे लगे कि कुछ और पूछना है।

वह चोर दूसरे दिन आया और रोने लगा और कहा, मुश्किल में डाल दिया, आदमी बड़े अजीब मालूम पड़ते हैं। क्योंकि मैं कल चोरी करने गया। ऐसा मौका जिन्दगी में कभी भी नहीं मिला था। राजा के महल में पहुंच गया। तिजोरी खुल गयी। अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा था उस तिजोरी के सामने। हाथ डालता हूं होशपूर्वक, तो हाथ भीतर नहीं जाता है। क्योंकि जैसे ही मुझे ख्याल आता है कि चोरी कर रहा हूं, हाथ रुक जाता है। क्योंकि चोर मैं भी नहीं होना चाहता

हूं। चोर! अगर कोई कह दे तो मैं उसकी गर्दन काट डालूं। चोर मैं भी नहीं होना चाहता हूं। होश छूटता है तो हाथ भीतर चला जाता है। लेकिन जैसे ही होश आता है, मुट्ठी खुल जाती है, हाथ बाहर लौट आने लगता है। आधी रात बीत गयी और आखिर बिना चोरी किये वापस लौट आया। यह तो तुमने मुश्किल में डाल दिया। सीधा कहो न कि चोरी मत करो। उस फकीर ने कहा, चोरी से हमें कुछ लेना-देना नहीं। बस ध्यानपूर्वक करो। क्योंकि इतना मैं जानता हूं कि ध्यानपूर्वक आज तक न कोई चोरी कर सका है, न कर सकता है।

ध्यानपूर्वक क्रोध कर सकते हैं? कैसे करियेगा, ध्यानपूर्वक क्रोध?

एक मेरे मित्र बहुत क्रोधी हैं। वह मुझसे कहते थे कि मुझे कुछ सीधा सरल रास्ता बताइए। मैंने एक कागज की पट्टी पर उनको लिखकर दे दिया कि अब मुझे क्रोध आ रहा है और इसको मैंने कहा—खीसे में रखो सदा। और जब भी क्रोध आये, पहले इसे निकाल कर पढ़ना, वापस रखना, फिर क्रोध करना। उन्होंने कहा, यह तो हो सकेगा, इसमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन नहीं हो सका। क्योंकि जैसे ही पट्टी का ख्याल आता है कि अब क्रोध आ रहा है, अचानक पाते हैं कि भीतर से कोई चीज बिखर गयी और फैल गयी। वह नहीं हो सकता।

ध्यानपूर्वक क्रोध नहीं हो सकता। ध्यानपूर्वक बुराई नहीं हो सकती। ध्यानपूर्वक पाप नहीं किया जा सकता। और जो ध्यानपूर्वक किया जा सकता है वह पुण्य है, वह पाप नहीं हो सकता।

इसलिए मैं जो इतना जोर देता हूं कि बुराई की इतनी चिन्ता न लें जितनी चिन्ता इस बात की लें कि आपका जीवन

ध्यानपूर्वक हो जाये, एक मेडिटेटिव हो जाये, ध्यानपूर्वक जीने लगें। तब आप पायेंगे कि जिन्दगी सब तरफ से बदलनी शुरू हो गयी क्योंकि ध्यानपूर्वक बुरा तो किया ही नहीं जा सकता। फिर वही शेष रह जाता है जो किया जा सकता है। पाप और पुण्य की परिभाषा मेरी दृष्टि में यही है। कोई मुझसे पूछता है कि पाप और पुण्य की क्या परिभाषा है तो मैं यही कहता हूं कि जिसे जागृत, होशपूर्वक ध्यानपूर्वक किया जा सके—वह पुण्य है और जिसे ध्यानपूर्वक किया ही न जा सके—वह पाप है। और कोई परिभाषा मेरी समझ में नहीं आती। किसी आदमी की छाती में जानने हुए, ध्यानपूर्वक छुरा नहीं भोंका जा सकता। वह छुरा तभी भोंका जा सकता है जब हम ध्यान को खो दें। ध्यानपूर्वक ही हम जीवन में शुभ को कर सकते हैं। अशुभ कभी भी सम्भव नहीं है।

एक आदमी की आपत्तिजनक आवाज उनकी फिक्र न करें, इतनी छोटी-सी बात की क्या फिक्र करते हैं। एकदम बच्चों जैसी बात न करें। कोई बचकाना करता है, उसको करने दें। ध्यानपूर्वक न कर रहा होगा, लेकिन आप तो परेशान न हों। आप तो ध्यानपूर्वक सुन सकते हैं। उसकी फिक्र नहीं करनी चाहिए, उसकी चिन्ता भी नहीं लेनी चाहिए। उसकी चिन्ता और फिक्र करने से उसका काम सफल हो जाता है।

बुराई को इस पृथ्वी से मिटाया जा सकता है। बुराई को आमूल नष्ट किया जा सकता है, लेकिन बुराई को अब तक आमूल नष्ट नहीं किया जा सका, आमूल नष्ट करना तो दूर बुराई रोज बढ़ती चली गयी। जरूर कहीं भूल हो गयी। भूल यह हो गयी कि हमने बुराई को सीधे मिटाने की कोशिश की है। पिछले पांच हजार वर्ष की नैतिकता, पांच हजार वर्ष के साधु-सन्त, पांच हजार वर्ष के शास्त्र, पांच हजार वर्ष का धर्म आदमी को बुराई से सीधा मिटाने की कोशिश में लगाये

हुए है। वह कहता है कि सीधे बुराई को मिटाओ। वह कहता है कि असत्य मत बोलो। वह कहता है, पाप मत करो। वह कहता है, चोरी मत करो। इसका परिणाम नहीं हो सका, जरा भी परिणाम नहीं हो सका। चोरी रोज बढ़ती चली गयी; पाप रोज बढ़ता चला गया; रोज बढ़ रहा है। इसमें पापी जिम्मेवार नहीं है, इसमें हमारे पाप का निदान ही, डायग्नोसिस ही भूल भरा है। हमने बात ही गलत की है।

अगर किसी आदमी से चोरी न करवानी हो तो यह मत कहिए कि चोरी मत करो क्योंकि चोरी मत करो, इसका कोई अर्थ ही नहीं होता। इसका ऐसे ही अर्थ हुआ, जैसे किसी आदमी को बुखार है तो हम उसको कहें कि बुखार को मत लाओ। और वह आदमी कहेगा, क्या बातें आप कर रहे हैं। वह आया है औषधि लेने, आप उसको उपदेश दे रहे हैं। वह कहता है, हमें औषधि चाहिए, बुखार आ गया। आप कहते हैं, तुम बड़े पापी हो। बुखार लाओ ही मत। बुखार बड़ी बुरी चीज है। वह भी राजी होता है कि बुखार बुरी चीज है। वह भी कहता है, बुखार मैं नहीं चाहता। तो हम उससे कहते हैं, फिर तुम लाये क्यों। वह कहता है कि बात तो समझ में आती है, लेकिन बुखार आ जाता है। उपाय ? उपाय यही है कि तुम लाओ मत।

यह उपाय नहीं है। बुखार को मिटाने के लिए औषधि खोजनी जरूरी है, सिर्फ उपदेश काफी नहीं है। मैं आपको यह कहता हूं, बुराई को मिटाने के लिए अब तक हमने उपदेश का प्रयोग किया है—यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। न करने से कुछ भी फल नहीं होगा। क्योंकि जिसको आप नहीं करते हैं, उसके करने की क्षमता आपके भीतर इकट्ठी होती चली जाती है और कभी बहुत विस्फोट से निकलती है। इसलिए अच्छे आदमी जब बुरे होते हैं तो बहुत

बुरे होते हैं। बुरा आदमी बहुत थोड़ा ही बुरा होता है। जो आदमी दिन में दो-चार दफे क्रोध कर लेता है वह आदमी कभी किसी की हत्या नहीं कर सकता। वह इतना क्रोध नहीं इकट्ठा कर पाता बेचारा कि हत्या कर दे। वह रोज ही निकल जाता है उसका क्रोध। लेकिन जो आदमी दो-चार साल तक क्रोध न किया हो उससे जरा सम्हल कर रहना। क्योंकि अगर उसका विस्फोट हो जाये तो वह हत्या से कम न करेगा। इससे कम पर उसका काम नहीं होगा। इतना उसने इकट्ठा कर लिया है।

जिन्दगी में जो बड़े पाप करते हैं वे वे लोग हैं जो छोटे-छोटे पाप न करने की जिद्द में बहुत से पाप की वृत्ति को इकट्ठा कर लेते हैं। इसलिए कभी अच्छा आदमी जब गिरता है तो बहुत बुरी तरह गिरता है, बहुत खाइयों में गिरता है। अच्छे समाज जब गिरते हैं तो बहुत खाइयों में गिरते हैं। यह हमारा समाज भी बड़ा अच्छा समाज था। और आज हम इसे देखें तो इससे बुरा समाज पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। क्या हो गया इस समाज का ? इसने छोटी-छोटी बुराइयां न करने की कसम खा ली है। इसने इतनी बुराइयां इकट्ठी कर ली हैं भीतर कि अब सब तरफ से फोड़े-फुंसियों में फूट-फूट कर निकल रही हैं। पूरा व्यक्तित्व देश का सड़ रहा है।

नहीं, मैं यह मानता हूं कि हमने बुराई को मिटाने की दृष्टि ही गलत पकड़ ली है। बुराई को अगर मिटाना है, वह जो ईविल है, वह जो अशुभ है, वह जो पाप है वह क्यों पैदा होता है ? यह समझना जरूरी है। वह इसलिए पैदा होता है कि मन अशान्त है। अशान्त मन कितने-कितने पाप कर सकता है, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। अशांत मन पुण्य तो कर ही नहीं सकता क्योंकि पुण्य के लिए शांति की भूमिका चाहिए। पुण्य के लिए फूल पुण्य का खिल सके तो शांति की

भूमि चाहिए। शांति की भूमि में ही पुण्य का फूल खिलता है। अशांति की भूमि में ही पाप का फूल खिलता है। भूमि ही गलत हम बनाये हुए हैं। मैं भूमि को बदलने के लिए जोर दे रहा हूं। लोग समझ नहीं पाते। लोग समझते हैं, ध्यान से मेरा मतलब वही है जो पहले था कि बैठकर किसी भगवान का ध्यान कर रहे हैं, कि बैठकर किसी मूर्ति का ध्यान कर रहे हैं, कि बैठकर किसी मन्त्र का जाप कर रहे हैं, कि बैठकर कोई माला फेर रहे हैं। नहीं, मेरा इन ध्यानों से कोई सम्बन्ध नहीं है। ध्यान से मेरा यह मतलब नहीं हैं कि आप बैठकर किसी भगवान का स्मरण कर रहे हैं। अगर भगवान का पता ही नहीं तो स्मरण कैसे करियेगा। और किस मूर्ति का स्मरण करियेगा ? कौन-सी मूर्ति है भगवान की ? कौन-सा नाम लीजिएगा, कौन-सा नाम है उसका ?

नहीं, इससे कुछ होने का नहीं है। मैं ध्यान से कुछ और ही अर्थ ले रहा हूं, वह अन्तिम बात आपसे कह दूं ताकि आपके ख्याल में रह जाये। हो सकता है बहुत से मित्र सुबह ध्यान में नहीं भी आये उनको भी ख्याल हो जाये। ध्यान से मेरा अर्थ है—परिपूर्ण समर्पण, टोटल सरेण्डर। वह जो हमारे चारों तरफ विराट जीवन है, उसके साथ एक हो जाने की स्थिति। उसके साथ तालमेल बिठा लेने की स्थिति, उसमें डूब जाने की स्थिति, उसमें खो जाने की, लीन हो जाने की स्थिति। और जब कोई व्यक्ति इस स्थिति में प्रवेश करता है तो उसके भीतर इतनी शांति उत्पन्न होती है कि उसका कोई हिसाब बताना मुश्किल है। क्यों होती है उत्पन्न ? इसलिए उत्पन्न होती है कि जब तक हम सारे जगत् को अपने से तोड़े रखते हैं, अलग रखते हैं, तब तक हम सारे जगत् के गहरे अर्थों में दुश्मन बने होते हैं, और दुश्मन कभी भी शांत नहीं होता। जब तक मैं सारी दुनिया से अलग हूं तब तक सारी

दुनिया मेरी दुश्मन है। जब तक मैं सारी दुनिया से भिन्न हूं तब तक सारी दुनिया से मुझे अपने को बचाना है। सारी दुनिया को जीतना है। अपने को बचाना है, अपने को मिटने नहीं देना है। तब तक मैं लड़ूंगा, लड़ाई अशांति बनेगी, लड़ाई तनाव बनेगी। लेकिन अगर मैंने सारी दुनिया से अपने को एक माना, एक जाना, एक पहचाना, और अगर दस क्षण को भी मेरे मन से सारा विरोध छूट गया और मैं एक हो गया तो अशांति कैसे रह जायेगी। तो चित्त शांत हो जायेगा।

उस चित्त की शांति की दशा में द्वार खुलता है वह, जिसे हम प्रभु कहें, जीवन कहें, उसकी झलक पहली दफे दिखाई पड़ती है। और वह झलक दिखायी पड़ जाये तो आप तत्काल दूसरे आदमी हो जाते हैं। होना नहीं पड़ता। आप दूसरे आदमी हो जाते हैं।

एक छोटी-सी कहानी से स्मरण दिलाऊं, फिर अपनी बात पूरी करूं—

एक सम्राट का लड़का घर से भाग गया। भाग क्या गया था, कोई लड़का कभी भागता नहीं, जब तक बाप भगाये न। बाप उपद्रवी था, अक्सर बाप उपद्रवी होते हैं क्योंकि बच्चे तो बहुत निरीह और निर्दोष आते हैं। जब तक उनको उपद्रव में डाला न जाये, सांचे में बिठाया न जाये तब तक उपद्रवी हो नहीं सकते। बाप की पीढ़ी जब तक नयी पीढ़ी को उपद्रव में ढाले न तब तक उपद्रव में जा कैसे सकती है। बाप की परेशानियों से हैरान, मुश्किल, होकर वह लड़का भाग गया था। पांच साल तक बाप ने उसकी फिक्र भी नहीं की थी। क्रोध में था बाप भी। लेकिन एक ही लड़का था। बाप बूढ़ा होने लगा, तब उसे याद सताने लगी। फिर उसने वजीरों को कहा ढूंढो, उसे ले आओ वापस। वह लड़का बेचारा, राजा का लड़का था। राजा का लड़का होना भी कभी-कभी बड़ा

दुर्भाग्य होता है। राजा का लड़का था, न ठीक से पढ़ा, न लिखा। राजा का लड़का था, कभी कोई मेहनत न की। तो सिवाये भीख मांगने के और कोई उपाय न रहा। राजा का लड़का अगर राजा न रह जाये तो भिखारी ही हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है। भीख मांगने लगा। पांच साल में तो भूल ही चुका कि राजा का लड़का है। कैसे याद रखे, जब मांगनी पड़ती हो भीख तो कितनी देर तक याद रखो कि राजा के लड़के हैं। थोड़े दिन याद रहा होगा, फिर भूल गया। फिर मिट गया ख्याल भी।

वजीर खोजते-खोजते उस गांव में पहुंचे, जहां वह भरी-दोपहरी में एक साधारण-सी गन्दी होटल के सामने जुआ खेलते लोगों से भीख मांग रहा था। और पैर बता रहा था, पैर में फफोले पड़े थे, कपड़े फट गये थे। कपड़े वही थे, पांच साल पहले जिनको लेकर निकला था। लेकिन अब पहचानना मुश्किल था। न कभी धुले थे, धूल, कीचड़ सब कट-पिट गये, सब पांच साल में बर्बाद हो गये। उन्हीं फटे कपड़ों को पहने हाथ जोड़े भीख मांग रहा था और मांग रहा था भीख, जूते के लिए। जूते समाप्त हो गये थे। भरी तेज धूप थी और सड़कें जलती थीं। उसके पैरों में फफोले थे, वह कपड़े बांधे था और लोगों से कह रहा था, मेरे पैरों पर फफोले हैं, दया करो और कुछ चार पैसे दे दो, क्योंकि जूते खरीदने हैं।

लोग उसकी तरफ ध्यान ही न दे रहे थे। कोई उसकी फिक्र ही न कर रहा था। तभी रथ रुका उस द्वार के सामने आकर। वजीर ने नीचे उतर कर देखा, वही मालूम पड़ता है। भागा हुआ पास गया, चेहरा देखा, वही है। पैर पर गिर पड़ा और कहा महाराज ने याद किया है, वापस चलें। पिता बीमार हैं, राज्य का अधिकार कौन सम्हाले? हाथ में टूटा-सा एल्युमिनियम का बर्तन था, दस-पांच पैसे उसमें पड़े थे। एक

क्षण में सब बदल गया—एक क्षण में! पात्र फेंक दिया उसने जोर से सड़क पर। सारे जुआरी चौंककर खड़े हो गये, सामने रथ खड़ा देखा। जुआ बन्द हो गया होटल के सारे लोग बाहर आ गये। उसने वजीर से कहा, जाओ, पहले तो यह करो, अच्छे वस्त्र लाओ, जूते लाओ, स्नान का इन्तजाम करो, भोजन का इन्तजाम करो। उसकी सब आंखें बदल गयीं, उसका चेहरा बदल गया, कपड़े अभी भी वही थे, सड़क वही थी, पात्र नीचे पड़ा था, लेकिन अब वह सम्राट हो गया।

होटल के लोगों ने कहा, आपका चेहरा एकदम बदल गया उसने कहा, बात मत करो, सोच कर बोलो, किससे बोल रहे हो। सम्राट हूं। वजीर कंप रहा है, लोग भागे हैं, कपड़े आ गये हैं, इन्तजाम हो गया है, इत्र छिड़के जा रहे हैं, स्नान करवाया जा रहा है। वह आदमी रथ पर बैठ गया। वे होटल के लोग बड़े उत्सुक हैं कि थोड़ी तो पहचान याद रखना। पर अब बात बिल्कुल बदल गयी है। पहले वे उसकी तरफ देख भी न रहे थे, अब वह उनकी तरफ बिल्कुल नहीं देख रहा है, वह कहीं और है। क्या हो गया है इस क्षण में? एक क्षण में एक किरण आयी, एक स्मरण आया, एक रथ आया द्वार पर, जिसने कहा सम्राट हो तुम।

ध्यान की गहराइयों में वह किरण आती है, वह रथ आता है द्वार पर जो कहता है सम्राट हो तुम, परमात्मा हो तुम, प्रभु हो तुम, सब प्रभु है, सारा जीवन प्रभु है। जिस दिन वह किरण आती है, वह रथ आता है, उसी दिन सब बदल जाता है। उस दिन जिन्दगी और हो जाती है। उस दिन चोर होना असम्भव है। सम्राट कहीं चोर होते हैं। उस दिन क्रोध करना असम्भव है। उस दिन दुखी होना असम्भव है। उस दिन एक नया जगत् शुरू होता है, उस जगत्, उस जीवन की खोज ही धर्म है।

इन चार चर्चाओं में इस जीवन, इस प्रभु को खोजने के लिए क्या हम करें उस सम्बन्ध में कुछ बातें मैंने कहीं। मेरी बातों से वह किरण न आयेगी, मेरी बातों से वह रथ भी न आयेगा, मेरी बातों से आप उस जगह न पहुंच जायेंगे। लेकिन हां, मेरी बातें आपको प्यासा कर सकती हैं। मेरी बातें आपके मन में घाव छोड़ जा सकती हैं। मेरी बातों से आपके मन की नींद थोड़ी-बहुत चौंक सकती है। हो सकता है, शायद आप चौंक जायें और उस यात्रा पर निकल जायें जो ध्यान की यात्रा है।

तो निश्चित है, आश्वासन है कि जो कभी भी ध्यान की यात्रा पर गया है, वह धर्म के मन्दिर पर पहुंच जाता है। ध्यान पथ है, उपलब्धि में वहीं धर्म का मन्दिर हो जाता है। और उस मन्दिर के भीतर जो प्रभु विराजमान है, वह कोई मूर्ति वाला प्रभु नहीं है, समस्त जीवन का ही प्रभु है। जीवन ही है प्रभु, इस सम्बन्ध में इन चार दिन मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

साधना–शिविर, जूनागढ़, दिनांक १२ दिसम्बर १९६९, रात्रि

श्री रजनीश आश्रम

यह आश्रम जीवन की प्रयोगशाला है। यहां जीवन बनाये और बदले जा रहे हैं, यहां आत्मा के विस्फोट के प्रयोग हो रहे हैं। भगवान श्री ने कहा है—'मैं यहां एक प्रयोग करने को उत्सुक हूं। जो मुझे हुआ है, चाहता हूं, तुम्हें भी हो जाये। हो सकता है। तुम्हारे भीतर पड़े बीज को देखता हूं। तुम्हारी क्षमता को देखता हूं। तुम्हारी गरिमा को देखता हूं। और यह भी देखता हूं कि तुम्हें इसका कुछ पता नहीं है।'

'मैं नहीं चाहता कि तुम बौद्ध हो जाओ, मैं चाहता हूं तुम बुद्ध हो जाओ। मैं नहीं चाहता कि तुम जैन हो जाओ; मैं चाहता हूं तुम जिन हो जाओ। मैं नहीं चाहता कि तुम क्रिश्चियन हो जाओ; मैं चाहता हूं तुम क्राइस्ट हो जाओ।'

आश्रम का दैनिक कार्यक्रम

श्री रजनीश आश्रम की पहली विशेषता है कि वहां भगवान स्वयं विराजते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि वहां प्रति दिन प्रातः आठ से साढ़े नौ बजे तक भगवान श्री की प्रवचन गंगा-प्रवाहित होती है। और तीसरी कि संध्या सात से साढ़े आठ तक साधकों और संन्यासियों के छोटे समूह को भगवान श्री का निकट से दर्शन उपलब्ध होता है, जिसमें वे नये मुमुक्षुओं को संन्यास में दीक्षित करते हैं तथा पुराने साधकों को साधन-सम्बन्धी कठिनाइयों का समाधान भी देते हैं। आश्रम की एक और विशेषता है कि प्रति माह दस दिवसीय समाधि साधना शिविर का आयोजन होता है—११ से २० तारीख तक। शिविर में रोज पांच ध्यान कराये जाते हैं।

भगवान श्री बारी-बारी से एक महीना हिन्दी में बोलते हैं और एक महीना अंग्रेजी में।

शिविर के दिनों के अलावा दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार रहता है—

प्रातः ६.००—७.०० सक्रिय ध्यान

प्रातः ८.००—१०.०० प्रवचन

संध्या ५.३०—६.३० कुंडलिनी ध्यान

संध्या ७.००—८.३० दर्शन

नोट—प्रभु श्री का सांध्य-दर्शन मात्र नये मित्रों की संन्यास-दीक्षा और साधकों के ध्यान-मार्ग दर्शन के लिए ही है। दर्शन के लिए सचिव मा योग लक्ष्मी से मिलकर पहले से ही तिथि निश्चित करवानी आवश्यक है।

सक्रिय ध्यान

एक घण्टे के इस ध्यान में पांच चरण हैं। पहले तीन चरण दस-दस मिनट के हैं और अन्तिम दो चरण पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के। पूरा ध्यान खड़े होकर करना है।

पहला चरण—आंखें बन्द कर लें, अच्छा हो कि आंख पर पट्टी लगा लें। फिर नाक से तेज और गहरी सांस लेना शुरू करें। सांस की गहराई की बजाय उसकी तेजी पर, वैसे ही सांस भीतर लेने की बजाय उसे बाहर फेंकने पर ज्यादा बल दें। सांस की गति के साथ शरीर गति करे तो करने दें। दस मिनट के लिए सांस ही सांस हो जायें। पूरी शक्ति लगा दें।

दूसरा चरण—तेज सांस लेने के कारण सक्रिय हो गये भावावेगों को शरीर से प्रगट होने दें। शरीर को पूरा पागल होने दें। यह रेचन का चरण है। अतः नाचें, गाएं, चिल्लाएं। जहां सुविधा न हो वहां आवाज न करें।

तीसरा चरण—बांहों को ऊपर उठा लें और पंजों के बल

उछलना शुरू करें और उसके साथ ही 'हू—हू—हू' की ध्वनि से भीतर चोट करें। मुंह खुला रहे, लेकिन 'हू' की आवाज को बाहर जाने देने से अधिक अन्दर चोट करने दें। अपनी पूरी ताकत लगा दें। जहां सुविधा न हो वहां हू—हू की आवाज बाहर न करें।

चौथा चरण—जैसे ही स्टॉप या रुकने की आवाज सुनें, वैसे ही जहां हो, जैसे हों—अचानक उसी मुद्रा में रुक जायें, जम जायें—निश्चल और शांत। जाग गई ऊर्जा को भीतर काम करने दें—बिना बाधा के। विचार उठें तो उन्हें भी साक्षीभाव से देखें।

अन्तिम चरण—ध्यान से प्राप्त आनन्द और अहोभाव को नाचकर और उत्सव मान कर व्यक्त करें।

कुंडलिनी ध्यान

पहला चरण—आंखें बन्द रखें, अथवा चाहें तो खुली भी रख सकते हैं। खड़े होकर पूरे शरीर को एड़ी से चोटी तक कंपने और हिलने दें। अंग-अंग को उस कम्पन में खुलकर भाग लेने दें और आप कम्पन ही हो जायें।

दूसरा चरण—पहले चरण के कम्पन से जो ऊर्जा जागे उसे अब पन्द्रह मिनट नाच के द्वारा व्यक्त करें। इस नृत्य में पूरे शरीर को भाग लेने दें, नाच में डूब जायें।

तीसरा चरण—बैठ जायें या खड़े रहें। लेकिन बिल्कुल स्थिर और मौन हो जायें।

चौथा चरण—अब लेट जायें और पूरे विश्राम और मौन में उतरें।

नाद ब्रह्म ध्यान

साठ मिनट के ध्यान में तीन चरण हैं। पहला चरण तीस मिनट का है तथा दूसरा और तीसरा चरण पन्द्रह-पन्द्रह मिनट

के हैं। लेकिन दूसरा चरण साढ़े सात-साढ़े सात मिनट के दो भागों में बंटा है।

पहला चरण—आंखें बन्द कर सुखपूर्वक बैठ जायें और होठों को भी बन्द रखें। अब भौंरे की भांति हूं ऽऽऽ का गुंजार करें—इतनी तेज आवाज में कि आपके पड़ोस में बैठे व्यक्ति को भी वह सुनाई पड़े। इस हूं ऽऽऽ की ध्वनि से पूरे शरीर को तरंगायित होने दें। यदि शरीर कुछ गति करे तो उसे भी होने दें। भाव करें कि शरीर एक बांस की पोंगरी है, जिसमें हूं ऽऽऽ की तरंगें गूंज रही हैं। एक ऐसा क्षण आयेगा कि गुंजन आप ही होने लगेगा और आप श्रोता रह जायेंगे।

दूसरा चरण—(पहले साढ़े सात मिनट) अब अपने दोनों हाथों को पेट के आगे बढ़ाकर बाहर की ओर वृत्ताकार गति से घुमायें। हथेलियों को आकाशोन्मुख रखें तथा दायें हाथ को दायीं ओर और बांये हाथ को बायीं ओर घुमायें। वृत्त को धीरे-धीरे बड़ा करते जायें हाथों की गति अत्यन्त धीमी और प्रसादपूर्ण हो। भाव करें की ऊर्जा बाहर जा रही है। (दूसरे साढ़े सात मिनट) अब हथेलियों को उलट कर जमीनोन्मुख कर दें तथा हाथों को विपरीत दिशा में, भीतर की ओर, वृत्ताकार गति करने दें। गति अत्यन्त धीमी और प्रसादपूर्ण हो। और ऐसा भाव करें कि ऊर्जा अन्दर आ रही है।

तीसरा चरण—हाथों की गति बन्द कर बैठे रहें या लेट जायें तथा शांत और स्थिर और मौन रहें।

विपश्यना ध्यान

यह ध्यान पचास मिनट का है, और बैठकर करना है। सुखपूर्वक बैठें, शरीर और मन को तनाव न दें और आंखें बन्द रखें। फिर अपने ध्यान को आते-जाते श्वास पर केन्द्रित करें। श्वास को किसी तरह की व्यवस्था नहीं देनी है, उसे उसके

सहज ढंग में चलने दें। सिर्फ ध्यान को उसकी यात्रा के साथ कर दें।

श्वास की यात्रा में नाभि-केन्द्र के पास कोई जगह है, जहां वह अधिक महसूस होता है। वहां विशेष ध्यान दें, पर श्वास पर ही ध्यान दें। अगर बीच में ध्यान कहीं चला जाये तो उससे घबरायें न। अगर मन में कोई विचार या भाव उठे तो उसे भी सुन लें, लेकिन फिर-फिर प्रेमपूर्वक ध्यान को श्वास पर लायें।

नटराज ध्यान

परमात्मा नटराज है, यह सृष्टि उसका नृत्य है और वह नर्तक का नाईं अपने नृत्य में समाया हुआ है। नटराज-नृत्य एक सम्पूर्ण ध्यान है।

यह ध्यान पेंसठ मिनट का है और इसके तीन चरण हैं। पहला चरण चालीस मिनट का, दूसरा बीस मिनट का, और तीसरा पांच मिनट का है।

पहला चरण—संगीत की लय के साथ-साथ नाचें, और नाचें, बस नाचें। पूरे अचेतन को उभरकर नृत्य में प्रवेश करने दें। इसमें साक्षी को, दृष्टा को, सब को भूल जायें, बस नृत्य ही हो जायें।

दूसरा चरण—लेट जायें। नृत्य से पैदा हुई सिहरन को अपने सूक्ष्म तलों तक प्रवेश करने दें—पूरे विश्राम में।

तीसरा चरण—पुनः खड़े होकर उत्सव मनायें, प्रमुदित हों।

गौरी शंकर ध्यान

गौरी शंकर ध्यान में पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के चार चरण हैं।

पहला चरण—सुखपूर्वक बैठें और आंखें बन्द कर लें। नाक से श्वास भीतर ले जायें और पूरे फेफड़े को भर जाने दें। उस

श्वास को भीतर ही रोके रहें, जब तक सहजता से रोक सकें। फिर धीरे-धीरे मुंह से श्वास को बाहर निकालें, बिल्कुल निकाल दें। श्वास के बिना जितनी देर फेफड़े को खाली रख सकते हो, रखें। फिर धीरे-धीरे नाक से श्वास को भीतर लें। यह क्रम पन्द्रह मिनट तक जारी रखें।

दूसरा चरण—अब आंखें खोल लें और श्वास-प्रश्वास को सामान्य हो जाने दें। फिर सामने हिलते हुए प्रकाश को देखें। इस देखने में कोई तनाव न हो, न एकाग्रता ही। दृष्टि को सहज और शिथिल रखें।

तीसरा चरण—खड़े होकर आंखें बन्द कर लें और शरीर को शिथिल और ग्राहक हो जाने दें। अब आपके भीतर प्रवाहित होने वाली सूक्ष्म ऊर्जा-तरंगें आपके शरीर को गति देने लगेंगी। उस पर (लातिहान) आपका वश नहीं होगा, लेकिन आप उसके साथ सहयोग करें।

चौथा चरण—अब बैठें या लेट जायें और स्थिर एवं शांत रहें।

●

हिन्दी पुस्तक-सूची

	मूल्य रुपयों में डीलक्स संस्करण	मूल्य रुपयों में सामान्य संस्करण
उपनिषद		
१. सर्वसार उपनिषद	६०.००	४०.००
२. केवल्य उपनिषद	६०.००	४०.००
३. अध्यात्म उपनिषद	७५.००	५०.००
४. कठोपनिषद	७०.००	—
कृष्ण		
५. कृष्ण : मेरी दृष्टि में (नया संस्करण)	६५.००	—
६. गीता-दर्शन, अध्याय १ से १८ ११ भागों में प्रकाशित	६५.०० से १००.००	२५.०० से ६०.००
अष्टावक्र		
७. महागीता भाग : १ से ६	५०.०० से ६०.००	३५.०० — (भाग १ से ५ केवल)
महावीर		
८. महावीर-वाणी भाग : ३	८०.००	५०.००
९. जिन-सूत्र भाग : १ से ४	८०.००	५०.०० (भाग १ से ३ केवल)

बुद्ध

१०. एस धम्मो सनंतनो भाग : १ से ६	७५.०० से ८०.००	५०.०० —
	(भाग १ से ३ केवल)	

लाओत्से

११. ताओ उपनिषद भाग : १ से ६	५०.०० से ७५.००	४०.०० से ४५.००
	(भगा १ से ३ केवल)	

प्रश्नोत्तर

१२. नहिं राम बिन ठांव	६०.००	४०,००
१३. प्रेम-पंथ ऐसो कठिन	६०.००	—
१४. उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र	५०.००	—
१५. मृत्योर्मा अमृतं गमय	५०.००	—

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां

१६. बिन बाती बिन तेल	७०.००	५०.००
१७. दिया तले अंधेरा	७५.००	५०.००
१८. सहज समाधि भली	७५.००	५०.००

मोबिल कालिन्स

१९. साधना-सूत्र	६०.००	४०.००

नारद

२०. भक्ति-सूत्र भाग : १ व २	५०.००	३०.००

ब्लावट्स्की

२१. समाधि के सप्त द्वार	६०.००	४०.००

शिव

२२. शिव-सूत्र	४०.००	—

आदि शंकराचार्य

२३. भज गोविन्दम्	५०.००	३०.००

नानक

२४. एक ओंकार सतनाम	७५.००	५०.००

कबीर

२५. सुनो भाई साधो	५०.००	३०.००
२६. गूंगे केरी सरकरा	"	"
२७. कस्तूरी कुण्डल बसे	"	"
२८. कहे कबीर दिवाना	"	"
२९. मेरा मुझमें कुछ नहीं	"	"
३०. कहै कबीर मैं पूरा पाया	"	"
३१. होनी होय सो होय	"	"

दादू

३२. पिव-पिव लागी प्यास	५०.००	३०.००
३३. सबै सयाने एक मत	"	"

फरीद

३४. अकथ कहानी प्रेम की	"	"

सहजोबाई

३५. बिन धन परत फुहार	"	"

दयाबाई

३६. जगत तरैया भोर की	"	"

मीराबाई

३७. मैंने राम रतन धन पायो	"	"
३८. झुक आई बदरिया सावन की	"	—

मलूकदास

३९. कन थोरे कांकर घने	"	३०.००
४०. रामदुवारे जो मरे	"	—

दरिया

४१. कानों सुनी सो झूठ सब ५०.०० —

४२. अमी झरत, बिगसत कंवल ६०.०० —

पलटू

४३. अजहूं चेत गंवार ७०.०० —

४४. सपना यह संसार ७५.०० —

४५. काहे होत अधीर ८०.०० —

चरणदास

४६. नहीं सांझ नहीं भोर ५०.०० —

शांडिल्य

४७. अथातो भक्ति जिज्ञासा भाग : १ व २ ७०.०० —

धरमदास

४८. जस पनिहार धरे सिर गागर ५०.०० —

४९. का सोवै दिन रैन ५०.०० —

रज्जब

५०. संतो, मगन भया मन मेरा ६५.०० —

सुन्दरदास

५१. हरि बोलो हरि बोल ५०.०० —

५२. ज्योति से ज्योति जले ६५.०० —

जगजीवन

५३. नाम सुमिर मन बावरे ५०.०० —

५४. अरी, मैं तो नाम के रंग छकी ,, —

वाजिद

५५. कहै वाजिद पुकार ,, —

गोरख

५६. मरो हे जोगी मरो ७५.०० —

सरहपा-तिलोपा

५७. सहज-योग ,, —

यारी

५८. बिरहिनी मंदिर दियना बार ५०.०० —

दूलन

५९. प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया ,, —

दरियादास, (बिहार वाले)

६०. दरिया कहै सब्द निरबाना ६०.०० —

लाल

६१. हंसा तो मोती चुगैं ५०.०० —

भीखा

६२. गुरु परताप साध की संगति ,, —

रैदास

६३. मन ही पूजा, मन ही धूप ५०.०० —

नये पेपर-बैक सस्ते संस्करण

६४. साधना-पथ ३० प्रवचन ४५४ पेज — २०.००

६५. नेति-नेति २४ प्रवचन ४७५ पेज — ,,

६६. संभोग से समाधि की ओर
१८ प्रवचन ३९२ पेज — ,,

६७. भारत के जलते प्रश्न
२४ प्रवचन ५६४ पेज — २५.००

६८. योग दर्शन भाग : १ व २
२० प्रवचन ५६० पेज — ,,

६९. असतो मा सद्गमय २८ प्रवचन ५९० पेज — ,,

७०. मैं कहता आंखन देखी
४३ प्रवचन, संकलन, पत्र; ६०० पेज — ,,

७१. महावीर वाणी भाग : १
१८ प्रवचन ४९४ पेज — ,,

७२. महावीर-वाणी भाग : २
१८ प्रवचन ४९८ पेज — ,,

७३. देख कबीरा रोया ३० प्रवचन ६६६ पेज ३०.००

७४. शिक्षा में क्रांति २३ प्रवचन ६२४ पेज — २५.००

पाकेट-बुक्स ,,

	मूल्य
७५. हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं	४.००
७६. रजनीश ध्यान योग	४.००
७७. रजनीश ध्यान दर्शन	४.००
७८. नये समाज की खोज	४.००
७९. जीवन ही है प्रभु	४.००

सम्पर्क-सूत्र
रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड
१७, कोरेगांव पार्क
पूना—४११ ००१
फोन : २८१२७, २०६८१, २०६८२
टेलेक्स : ०१४५–४२१ ताओ ग्राम : 'तथाता'